उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ अप्रैल—१९८५ अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षट् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मन में ही बन्धन है और मन में ही मुक्ति। अगर तुम कहो, "मैं मुक्त हूँ। मैं ईश्वर की सन्तान हूँ। मुझे कौन बाँध सकता है?" तो तुम मुक्त ही हो जाओगे। जिस आदमी को साँप ने काटा है, वह अगर पूरे विश्वास और दृढ़ता के साथ कहे कि 'मुझ पर विष नहीं चढ़ा, विष नहीं चढ़ा!' तो अवश्य ही उस पर विष का परिणाम नहीं होता।

(२)

गन्दे पानी में यदि तुम एक टुकड़ा फिटकरी डाल दो तो सारा मैल नीचे बैठकर पानी स्वच्छ हो जाता है। विवेक और वैराग्य मानो फिटकरी हैं। इन्हीं के द्वारा संसारी मनुष्य की विषयासक्ति दूर होकर वह शुद्ध बनता है।

(३)

विषयी लोगों का मन गोबर के कीड़े की तरह होता है। गोबर का कीड़ा सदा गोबर में रहता है और गोबर में ही रहना पसन्द करता है। यदि कोई उसे गोबर से उठाकर कमल के फूल पर बैठा दे तो वह छटपटाकर मर जाता है। इसी तरह विषयी पुरुष संसार की विषय-वासनाओं से भरे दूषित वातावरण को छोड़ एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं जाना चाहता।

(४)

जो हमेशा दूसरों के गुण-दोषों की चर्चा करते रहता है, वह अपना समय फालतू बरबाद करता है, क्योंकि परचर्चा करने से न तो आत्मचर्चा हो पाती है और न परमात्मचर्चा ही।

ब्रह्मस्तोत्रम्

ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय, नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥१

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निष्कलं निर्विकल्पम् ॥२

भयानां भयं भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं, परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ॥३

परेश प्रभो सर्वरूपाविनाशिन्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व जगद्भासकाधीश पायादपायात् ॥४

तदेकं स्मरामस्तदेकं भजामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरेण्यं व्रजामः ॥५

पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात ॥६

अर्थ — ॐ, हे संपूर्ण संसार के आश्रय, सत्स्वरूप आपको नमस्कार; विश्वरूपात्मक चित्स्वरूप, आपको नमस्कार, अद्वैत तत्वस्वरूप, मुक्तिप्रद, आपको नमस्कार, सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म आपको नमस्कार ।१

एक मात्र आप ही आश्रय स्थल हैं, एकमात्र आप ही वरेण्य हैं, एकमात्र आप ही जगत के कारण और विश्वरूप हैं; एकमात्र आप ही विश्व के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं, आप ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ निष्कल एवं निर्विकल्प हैं ।२

आप सभी भयों में एकमात्र भय, भीषणों में भीषणतम, प्राणियों की गति, पावकों के पावक, अत्यंत ऊँचे पदों पर अधिष्ठितों के विधाता, श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम एवं रक्षकों के रक्षक हैं ।३

हे परमेश्वर, प्रभु, विश्वरूप, अविनाशी, अनिर्देश्य, समस्त इन्द्रियों के लिए अगम्य, सत्य, अचिन्त्य, अक्षर, व्यापक, अव्यक्ततत्व, संसार के प्रकाशक, अधीश्वर — आप हमलोगों की अनिष्ट से रक्षा करें ।४

उसी अद्वितीय का हम स्मरण करते हैं, उसी अद्वितीय का भजन करते हैं, उसी अद्वितीय विश्व के साक्षी स्वरूप को नमस्कार करते हैं; सत्स्वरूप, अद्वितीय, निधान, निरालम्ब परमेश्वर, भवसागर की तरणी और आश्रयस्वरूपों का आश्रय ग्रहण करते हैं ।५

जो एकाग्र चित्त से परब्रह्म परमात्मा के इस पञ्चरत्न स्तोत्र का पाठ करेंगे वे ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त होंगे ।६

☆

भगवत्-सान्निध्य की साधना

--स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीरामकृष्ण का उपदेश है कि जब संसार के कर्म करो तब 'एक हाथ से कर्म करो और दूसरे हाथ से ईश्वर के चरणों को पकड़े रहो। जब संसार के कर्मों का अन्त हो जायगा तब दोनों हाथों से ईश्वर के चरणों को पकड़ना।' आध्यात्मिक भाषा में इसका अर्थ कर्म करते समय आधे मन से कर्म और आधे मन से भगवच्चिन्तन करना, और कर्म समाप्त होने पर पूरा मन भगवान के चिन्तन में लगा देना है।

यह उपदेश सभी साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि अधिकांश लोगों के लिए संसार की झंझटों से छुटकारा पाकर एकाग्रचित्त हो अधिक समय केवल भगवच्चितन में लगाना संभव नहीं होता। एक तो पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों के कारण ऐकान्तिक भगवद्ध्यान का समय या अवसर बहुत कम मिलता है। दूसरे यदि ऐसा सुयोग मिलता भी है तो साधक का मन सहायक नहीं होता। कर्म से छुटकारा पाने पर भी हम दोनों हाथों से भगवान के चरण पकड़ नहीं पाते। ऐसी स्थितिमें कर्म के समय का यथासाध्य सदुपयोग करना ही एकमात्र युक्तियुक्त विकल्प रह जाता है। यही नहीं, आध्यात्मिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए साधना को ध्यान-जप, भजन-पूजन तक ही सीमित रखने से काम नहीं चलेगा। हमें अपने दैनन्दिन जीवन के प्रत्येक क्षण को साधना में परिणत करना होगा। हमें ऐसा जीवन-यापन करना होगा कि सांसारिक और आध्यात्मिक कर्मों के बीच अन्तर ही न रहे। समग्र जीवन के आध्यात्मीकरण के अनेक उपायों में कर्म के समय आधे मन से कर्म और आधे मन से भगवच्चिन्तन करना एक है।

पर क्या यह सम्भव है? क्या मन को इस तरह दो भागों में विभक्त किया जा सकता है? ऐसा करने से कर्म की हानि नहीं होगी? इन शंकाओं के समाधान के लिए सर्वप्रथम हमें मन के स्वरूप को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार, भावनाएँ, इच्छाएँ एवं कल्पनाएँ एक के बाद एक निरंतर उठती रहती हैं। वस्तुतः इन निरंतर उठ रही चितवृत्तियों के प्रवाह का नाम ही मन है। सामान्यतः कोई भी दो चित्तवृत्तियाँ एक समान नहीं होतीं। जब हम कोई कार्य करते हैं तब इस कार्य विशेष से सम्बन्धित वृत्तियाँ उठती हैं और अन्य वृत्तियाँ कुछ समय के लिए दब जाती हैं। लेकिन फिर भी सारी वृत्तियां कर्म-विशेष से सम्बन्धित नहीं होतीं। बीच-बीच में दूसरी वृत्तियाँ भी उठती रहती हैं। ध्यान के समय भगवदाकारा वृत्तियों का बाहुल्य होने पर भी अन्य वृत्तियाँ भी मन में उठती रहती हैं। केवल एक योगी के प्रशिक्षित मन में ही कर्म के समय केवल कर्म-सम्बन्धी और ध्यान के समय केवल भगवदाकारा वृत्तियाँ उठती हैं। इसे निम्न चित्र की सहायता से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

(१) मन की सामान्य अवस्था—
क-ख-ग-घ-च-छ-ज-झ-प-भ

(२) कर्मरत साधारण व्यक्ति का मन—
क-ख-क-ग-ध-क-क-ग, झ-क

(३) ध्यान करते समय साधारण व्यक्ति का मन—
भ-क-ख-भ-भ-भ-भ-ख-भ-घ

(४) कर्मरत योगी का मन—
क-क-क-क-क-क-क-क-क-क

(५) ध्यानरत योगी का मन—

भ-भ-भ-भ-भ-भ-भ-भ भ-भ

[क = कर्म सम्बन्धी चित्त वृत्ति; भ = भगवदाकारा वृत्ति; अन्य अक्षर अन्य वृत्तियों के प्रतीक हैं]

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि कर्म करते समय भी आधी वृत्तियाँ कर्म से सम्बन्धित, और आधी असंबद्ध होती हैं। इसे ही आधा मन कर्म में लगाना कहते हैं। सत्य तो यह है कि हम कभी भी पूरे मन से कोई भी कार्य नहीं करते। हमारा प्रस्तुत कार्य कर्म से असंबद्ध वृत्तियों के स्थान पर भगवदाकारा वृत्ति उठाना है। ऐसा करने पर मन में केवल दो प्रकार की वृत्तियाँ उठेंगी —एक भगवदाकारा और दूसरी कर्म सम्बन्धी। इसे निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

क-भ-क-क-क-भ-भ-क-भ-क-भ

यही कर्म के समय आधे मन से कर्म और आधे मन से भगवच्चिन्तन करना हुआ। तब कर्म समाप्त कर ध्यान में बैठने पर पूरे मन से भगवच्चिन्तन करना आसान होगा।

हम अपने दैनन्दिन कर्मों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। नहाना-धोना, रसोई बनाना, घर साफ करना, पैदल या सवारी से आवागमन करना इत्यादि मुख्यतः शारीरिक कार्य हैं जिन्हें हम अभ्यास के कारण यंत्रवत् करते हैं। इनमें सामान्यतः हमारा मन खाली रहता है, तथा स्वच्छन्द रूप से इधर-उधर भटकता रहता है। पढ़ना-लिखना वार्तालाप करना आदि कर्मों में न्यूनाधिक मात्रा में मनोनिवेश करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनमें चित्त की एकाग्रता की अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन ऐसे कर्मों के बीच भी अवकाश के छोटे-बड़े अवसर होते हैं जब मन उन कर्मों से कुछ समय के लिए हट जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के कर्मों में से हम किसी भी प्रकार का कर्म क्यों न कर रहे हों, मन को पर्याप्त अवकाश प्राप्त होता है, जिसका उपयोग भगवच्चिन्तन में किया जा सकता है। शारीरिक एवं यंत्रवत क्रियाओं के समय तो हम अपने पूरे मन को भगवान् में लगा सकते हैं। जिन कार्यों में मनोनिवेश अधिक मात्रा में आवश्यक है उनके प्रारंभ, अन्त, और बीच-बीच में भगवान् का स्मरण आसानी से किया जा सकता है।

कर्म के समय भगवच्चिन्तन का अधिक उपयुक्त नाम है, 'भगवद्सान्निध्य की साधना' क्योंकि इस साधना में दैनन्दिन कार्यों के बीच भगवान् की अवस्थिति का, उनके संस्पर्श का अनुभव करने का प्रयत्न किया जाता है। यह कार्य अनेक प्रकार से किया जा सकता है।

(१) यंत्रवत किये जानेवाले कार्यों के समय हम सोचें कि हमारे इष्ट देवता हमारे पास ही विद्यमान हैं। कपड़े धोते समय, रसोई बनाते समय वे हमारे निकट खड़े हो प्रसन्नभाव से हमें देख रहे हैं। गमनागमन करते समय हम सोचें कि वे हमारे साथ आ-जा रहे हैं, रेल या मोटर में हमारे पास बैठे हैं। बीच-बीच में हम मन-ही-मन अपने सान्निध्य में स्थित अपने इष्ट को प्रणाम कर सकते हैं, अथवा 'प्रभु, मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो; मेरा सर्वस्व तुम्हारा है' इत्यादि प्रार्थना या वार्तालाप प्रभु से कर सकते हैं।

यह साधना सबसे सरल तथा आनन्ददायक है। क्योंकि हम भगवान् के इस रूप विशेष का चिन्तन करते हैं जो हमें सबसे प्रिय लगता है। इसमें कल्पना का उपयोग किया जाता है और जिसकी कल्पना-शक्ति जितनी प्रबल होगी वह उतना अधिक सफल होगा। लेकिन इसमें एक खतरा भी है जिससे सावधान रहना आवश्यक है। भावप्रवण व्यक्ति कल्पना और यथार्थ दर्शन में अन्तर न कर पाने के कारण कल्पना को ही दर्शन समझने की गलती कर सकते हैं। कल्पना को यथार्थ समझना एक मानसिक रोग विशेष है। अतः

सदा यह ध्यान रहे कि हम कल्पना का साधना में उपयोग मात्र कर रहे हैं, इससे अधिक कुछ नहीं।

(२) कल्पना के साथ जुड़ी उपर्युक्त समस्या से बचने के लिए इष्टदेव के स्थूल रूप का चिन्तन करने के बदले उनकी चेतन अवस्थिति मात्र का चिन्तन किया जा सकता है। हम सोचें कि वे आनन्दमय चैतन्य सत्ता के रूप में हमारे निकट विद्यमान हैं तथा हमपर कृपा-वर्षण कर रहे हैं।

(३) भगवत्-सान्निध्य के अभ्यास का तीसरा प्रकार है, परमात्मा की सत्ता को आस-पास की विभिन्न वस्तुओं में देखने का प्रयत्न करना।

(क) श्रीरामकृष्ण व स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव में अन्य प्राणियों की अपेक्षा परमात्मा का सबसे अधिक प्रकाश है। अतः सभी में, स्त्री-पुरुषों, बालक, युवा, वृद्ध, धनी-निर्धन, पापी-पुण्यात्माओं, जिनपर भी हमारी दृष्टि पड़े तथा जिनके संपर्क में हम आयें, उन्हें परमात्मा का एक-एक रूप सोचें। स्वामी विवेकानन्द ने तो निर्धन, रोगी, दरिद्र, पापी को अपना विशेष आराध्य माना है। अतः लोगों में भगवान् को देखने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। यदि प्रारंभ में यह करना संभव न हो तो साधु-सन्तों में भगवद्-बुद्धि करना आसान हो सकता है. लेकिन इससे भगवद्-सान्निध्य की साधना सीमित हो जायेगी।

(ख) सभी विशेषत्व युक्त वस्तुओं में परमात्मा का विशेष प्रकाश है। श्री रामकृष्ण कहते हैं कि भगवान् विभु रूप में तो सर्वत्र विद्यमान हैं लेकिन जहाँ बल, बुद्धि, गुण, सामर्थ्य अधिक हों, वहाँ उनका अधिक प्रकाश है। यही बात श्रीकृष्ण गीता के सातवें तथा दसवें अध्याय में भी कहते हैं। भगवान् जल में रस, सूर्य-चंद्र में प्रकाश, आकाश में शब्द तथा नरों में पौरुष के रूप में विद्यमान हैं। वे बुद्धिमानों में बुद्धि, तेजस्वी व्यक्तियों में तेज तथा बलवानों में बल हैं। वे नक्षत्रों में चन्द्र, वेदों में सामवेद, इन्द्रियों में मन हैं। सागर, गंगा, अश्वत्थ वृक्ष में भी वे हैं मगर पुरुषों में अध्यात्म, विद्या आदि उनके विशेषरूप हैं, तथा नारियों में कीर्त्ति, श्री, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा उनके प्रकाश हैं। ये वस्तुएँ किसी-न-किसी रूप में हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी हैं और जब कभी इनसे हमारा साक्षात्कार हो, हम इनमें परमात्मा को देखने का प्रयत्न कर उनकी सन्निधि का अनुभव कर सकते हैं।

(ग) वस्तुतः परमात्मा तो सर्वत्र विद्यमान हैं। उन्होंने सभी वस्तुओं को मानो बाहर से आवृत कर रखा है एवं सभी के भीतर ओत-प्रोत रूप से विद्यमान हैं— "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।" अतः बल, गुण, विभूति, सामर्थ्य निर्विशेष, शुभाशुभ सभी वस्तुओं में भगवान् की विद्यमानता का अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह साधना श्रेष्ठतम होते हुए भी सबसे कठिन भी है।

(४) भगवान् के सान्निध्य का चिन्तन बाह्य वस्तुओं अथवा व्यक्तिओं में न कर अपने हृदय में किया जा सकता है। कर्मों के बीच जब भी अवकाश मिले मन ही-मन-अपने हृदय-मंदिर में चले जाएँ तथा वहाँ क्षणभर के लिए अपने प्रियतम प्रभु से प्रेमपूर्ण संभाषण कर लें। यह मानो संसार की व्यस्तता के बीच चोरी छिपे अपने प्रेमास्पद से मिलने जैसा है।

(५) चित्र अथवा भगवन्नाम की सहायता से भी भगवत्सान्निध्य का प्रयत्न किया जा सकता है। 'छाया ही काया है' इस सिद्धान्त के अनुसार भक्त चित्र एवं चित्रित व्यक्ति को अभेद मानते हैं। अतः अपने कमरे अथवा कार्यालय के किसी प्रमुख एवं स्पष्ट स्थान पर भगवान् के रूप विशेष का चित्र लगा लें और यदि उसमें प्रभु की अवस्थिति का दृढ़ विश्वास रहे तो कर्म के बीच-बीच में चित्र की ओर देखकर प्रभु की अवस्थिति का अनुभव किया जा सकता है। इसी तरह 'नाम और नामी भी अभेद' माने जाते हैं। कर्म के बीच भगवन्नाम का प्रवाह बनाये रखें। अवकाश मिलते ही कोई श्लोक या भजन की किसी पंक्ति को मन-ही-

मन आवृत्ति कर भगवान् के संस्पर्श में जाया जा सकता है।

चित्र एवं भगवन्नाम की सहायता लेने पर भी कई बार इस अभ्यास में सफलता नहीं मिलती है क्योंकि नाम जप यंत्रवत् हो जाता है, और चित्र एक जड़ वस्तु मात्र रह जाता है, तथा इन दोनों के होते हुए भी मन भटकता ही रहता है। फिर भी इनका कुछ-न-कुछ शुभ प्रभाव तो पड़ेगा ही। प्रतिदिन हमारे नेत्र न जाने कितने शुभाशुभ दृश्य देखते हैं, और न जाने कितने स्वर कर्णों में प्रविष्ट होते हैं। उपर्युक्त उपाय से जाने-अनजाने हमारे नेत्रों और कर्ण कुहरों से कुछ-न-कुछ शुभ संवेदन मन तक पहुँच ही जायेंगे।

मन सदा एक ही अवस्था में नहीं रहता। कभी वह रूप-चिन्तन करना चाहता है तो कभी उसकी रुचि निराकार में होती हैं। कभी वह प्रभु को बाहर देखना चाहता है तो कभी हृदय में उनका अनुभव करना चाहता है। इन बदलते मनोभावों के अनुरूप हम भगवत् सान्निध्य की साधना कर सकें, इसी उद्देश्य से ये विभिन्न सुझाव दिये गये हैं। साधक अपनी रुचि, मनःस्थिति तथा परिस्थिति के अनुसार इनमें से एक या अनेक का प्रयोग और उपयोग कर सकता है।

*

स्वामी विवेकानन्द और जमशेदजी टाटा

—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर

युवक नरेन्द्रनाथ को अपने धर्म-संस्थापन का असमाप्त कार्य सौंपकर परमहंस श्रीरामकृष्ण ने १६ अगस्त, १८८६ ई० को महासमाधि ली थी। नरेन्द्रनाथ ने गृह-त्याग किया, गुरुभाइयों का भी संग त्यागा और एक दीन-हीन अकिंचन संन्यासी के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण करने को वे निकल पड़े। कभी वे पैदल भ्रमण करते, तो कहीं रेल में, कहीं राजमहल में आश्रय लेते तो कहीं दरिद्र की कुटिया में। कहीं पण्डितों के बीच शास्त्र-चर्चा करते तो कहीं चाण्डाल के साथ धर्मप्रसंग। इस प्रकार वे जात-पात, धर्म-सम्प्रदाय, धनी-निर्धन का भेद-भाव भुलाकर लगभग छः सुदीर्घ वर्षों तक भारतीय जन-समुदाय के बीच विचरण करते रहे। इस अवधि में उन्होंने सम्पूर्ण भारतवासियों के सुख-दुःख में हिस्सा बँटाया, उनकी विविध जीवन-पद्धतियों व समस्याओं को निकट से देखा, उनका गहराई से अध्ययन किया और मानो भारतभूमि के साथ वे एकाकार हो गये। १८९२ ई० के अन्तिम सप्ताह में वे भारत के दक्षिणी छोर, तीन समुद्रों के संगम क्षेत्र, कन्याकुमारी पहुँचे। वहाँ सागर के खारे जल से घिरे एक शिला-खण्ड पर बैठकर वे ध्यान में तल्लीन हो गये। उनके ध्यान का विषय ३३ करोड़ पौराणिक देवी-देवताओं में से कोई भी न था। उनका मन एकाग्र हुआ था ३३ करोड़ जीवन्त मानव-देवताओं पर। भारतवर्ष की आम जनता का दुःख-दारिद्र्य देखकर उनका हृदय पिघल उठा था, प्राण बिलख उठे थे और उनके मन में उधेड़-बुन चल रही थी—क्या इनके उद्धार का कोई भी उपाय नहीं है? क्या भारतवासी पतन के गर्त में गिरते ही रहेंगे? पाश्चात्य विज्ञान और भौतिकतावाद की थोड़ी सहायता लिये बिना भारत नहीं बचेगा। भारत के पुनरुत्थान के लिए सहसा

उनके मन में एक समाधान सूझ पड़ा। वे लिखते हैं— "मैंने सोचा कि हम जो इतने संन्यासी घूमते-फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे न कि खाली पेट से धर्म नहीं होता। वे गरीब जो जानवरों का सा जीवन बिता रहे हैं, उसका कारण अज्ञान है।···सोचो, गाँव-गाँव में कितने ही संन्यासी घूमते-फिरते हैं, वे क्या काम करते हैं? यदि कोई निःस्वार्थ परोपकारी संन्यासी गाँव-गाँव में विद्यादान करता फिरे···तो उससे समय पर मंगल होगा या नहीं? ···इसे करने के लिए पहले तो लोग चाहिए, फिर धन। गुरु की कृपा से मुझे प्रत्येक नगर में दस-पंद्रह आदमी मिल जायेंगे। मैं धन की चेष्टा में घूमा, पर भारतवर्ष के लोग भला धन देंगे!!!"

स्वामीजी ने निश्चय किया कि वे स्वयं ही अमेरिका जायेंगे और अपने बल-बूते से धन कमाकर भारत की दरिद्र जनता के बीच शिक्षा व उद्योग-धन्धों के प्रसार में लगा देंगे।

३१ मई, १८९३ ई० को उन्होंने बम्बई से जलयान में भौतिक समृद्धि की रानी अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने चीन व जापान में उतरकर कुछ स्थानों का भ्रमण भी किया। भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी उद्योगपति जमशेदजी टाटा उस समय जापान में ही थे। स्वामीजी से वहाँ उनकी मुलाकात सम्भवतः किसी कारखाने या होटल में हुई थी। बाद में श्रीटाटा ने भगिनी निवेदिता को बताया था कि स्वामीजी जब जापान में थे तो वहाँ के लोग भगवान् बुद्ध के साथ उनका सादृश्य देखकर हतप्रभ रह गये थे। सम्भवतः जापान में ही परिचय हो जाने के कारण स्वामीजी और श्री टाटा ने जापान से कनाडा तक की समुद्रयात्रा एक ही साथ की थी। उनका 'एम्प्रेस ऑफ इण्डिया' नामक जलयान १४ जुलाई को याकोहामा से चलकर २५जुलाई को वैंकुवर पहुँचा। ११-१२ दिनों की सहयात्रा ने उनके बीच प्रगाढ़ घनिष्ठता उत्पन्न कर दी थी। उनके बीच शिक्षा व उद्योग के विस्तार के बारे में जो चर्चाएँ हुईं थीं, उनका विस्तृत विवरण तो नहीं मिलता, पर यत्र-तत्र थोड़ा आभास जरूर मिलता है।

स्वामीजी ने जमशेदजी से जो बातें कही होंगी, उनका अनुमान हम उनकी इस यात्रा के पूर्व तथा बाद की उक्तियों एवं लेखन से कर सकते हैं। जापान से प्रस्थान करने के चार दिन पूर्व, १० जुलाई को वे आलासिंगा पेरुमल के नाम अपने पत्र में लिखते हैं—

"जान पड़ता है कि जापानी लोग वर्तमान आवश्यकताओं के प्रति पूर्ण सचेत हो गये हैं। उनकी एक पूर्ण सुव्यवस्थित सेना है, जिसमें यहीं के अफसर द्वारा आविष्कृत तोपें काम में लायी जाती हैं और जो अन्य देशों की तुलना में कोई कम नहीं हैं। ये लोग अपनी नौसेना बढ़ाते जा रहे हैं। मैंने एक जापानी इंजीनियर की बनायी करीब एक मील लम्बी सुरंग देखी है। दियासलाई के कारखाने तो देखते ही बनते हैं। ये लोग अपनी आवश्यकता की सभी चीजें अपने देश में ही बनाने पर तुले हुए हैं।···जापानियों के विषय में जो कुछ मेरे मन में है, वह सब मैं इस छोटे से पत्र में लिखने में असमर्थ हूँ। मेरी इच्छा तो सिर्फ यह है कि प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में हमारे नवयुवकों को चीन और जापान में आना चाहिए।···

"और तुमलोग··· किताबें हाथ में लिये केवल समुद्र के किनारे फिर रहे हो, यूरोपियनों के मस्तिष्क से निकली हुई इधर-उधर की बातों को लेकर ये समझे दुहरा रहे हो। तीस रुपये की मुंशीगीरी या बहुत हुआ तो एक वकील बनने के लिए जी-जान से तड़प रहे हो।···क्या समुद्र में इतना पानी भी न रहा कि तुम विश्वविद्यालय के डिप्लोमा, गाउन तथा पुस्तकों के समेत उसमें डूब मरो?"

फिर अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जो अगस्त के अन्त में कतिपय व्याख्यान दिये थे, उनमें से एक का विवरण देते हुए एक समाचारपत्र ने लिखा था—"वक्ता ने बतलाया कि उनका उद्देश्य अपने देश में संन्यासियों का

औद्योगिक कार्यों के निमित्त संगठन करना है, जिससे कि वे जनता को इस औद्योगिक शिक्षा का लाभ उपलब्ध करा सकें और इस प्रकार उन्हें उन्नत कर सकें तथा उनकी दशा सुधार सकें।"

उपर्युक्त उद्धरणों से ऐसा लगता है कि उन दिनों स्वामीजी के मन में निम्नलिखित विचार चल रहे थे -- (१) संन्यासियों का एक ऐसा संघ बनाया जाय, जिसके सदस्य आम जनता के बीच जाकर आध्यात्मिक ज्ञान के साथ-ही-साथ भौतिक विज्ञान का भी वितरण करें। अपनी इस योजना का उल्लेख उन्होंने बाद के कई पत्रों में किया था। (२) भारत की शिक्षा-प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्त्तन। यहाँ के नवयुवकों को जापान तथा यूरोप-अमेरिका के अन्य नगरों में भेजकर वैज्ञानिक व यांत्रिक शिक्षा दिलायी जाय तथा भारतवर्ष में भी सिर्फ क्लर्क बनाने वाली शिक्षा के स्थान पर चरित्र-निर्माण करने वाली तथा उद्योग-धन्धे सिखानेवाली शिक्षा का प्रचलन किया जाय। बाद में भी एकबार उन्होंने वार्तालाप के प्रसंग में कहा था—"यदि मुझे कुछ अविवाहित ग्रेजुएट मिल जायें तो मैं उन्हें जापान भेजकर यांत्रिक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दूँगा, ताकि जब वे स्वदेश लौटें, तो अपने ज्ञान से भारत का कुछ हित कर सकें।" (३) भारत का धनिक-वर्ग भारत में उन्नत कृषि तथा औद्योगिक उन्नति में पूँजी निवेश करें। एक अन्य समय उन्होंने कहा था कि भारतीय व्यवसायी वर्ग सिर्फ विदेशी माल के व्यापार के स्थान पर यदि अपना धन कल-कारखाने खोलने में लगायें, तो इससे देश की भलाई भी होगी और उनका मुनाफा भी बढ़ेगा।

स्वामीजी ने जमशेदजी के साथ मुख्यत: इन्हीं विषयों पर चर्चा की थी। कहते हैं कि एकदिन स्वामीजी उनसे बोले—"आप जापान से दियासलाइयाँ लाकर अपने देश में बेचकर जापान को धन क्यों दे रहे है? आपको तो इसमें मामूली-सा कमीशन मात्र मिलता है। इससे अच्छा तो यह होता कि आप देश में ही दियासलाई का कारखाना लगाइये। इससे बहुत-से लोगों को रोजगार भी मिलेगा और देश का धन देश में ही रह जायगा।" स्मरणीय है कि तबतक श्री टाटा के कपड़े की दो मिलें मात्र थीं, बाद में उन्होंने धीरे-धीरे अन्य उद्योग भी प्रारम्भ किये थे तथा इस्पात उद्योग की योजना बनायी।

जमशेदजी ने पिछले ही वर्ष (१८९२ ई० में) एक ट्रस्ट की स्थापना की थी जिसके माध्यम से वे कुशाग्र-बुद्धि भारतीय विद्यार्थियों को ऋण देकर उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजा करते थे। यह तो स्वामीजी के मन की ही बात थी अत: उन्होंने अवश्य ही इस पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की होगी। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि भारत में भी ऐसी शिक्षा-व्यवस्था का विकास करना होगा। ऐसे संस्थान गढ़ने होंगे, जहाँ कि 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श में निष्ठा रखनेवाले विद्वान् मानवीय, सामाजिक व भौतिक विज्ञान की उन्नति व प्रसार के लिए कार्य करेंगे। उन दिनों स्वामीजी ने खेतड़ी के राजा को जो पत्र लिखे थे, उनमें इन चर्चाओं का कुछ विवरण दिया था, परन्तु दुर्भाग्यवश अब वे अप्राप्य हैं।

कनाडा में जलयान से उतरकर श्री टाटा ने शिकागो जाकर वहाँ पर आयोजित सभ्यता, कला, विज्ञान तथा उद्योग की प्रदर्शनी देखी, और वहाँ से इंग्लैंड होते हुए भारत लौट आये। उसी मेले का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था—विश्व धर्म महासभा, पर उसमें काफी देरी थी।

११ सितम्बर को स्वामी विवेकानन्दजी ने धर्म-महासभा के प्रथम दिन अपना ऐतिहासिक अभिभाषण दिया। उनकी सफलता का संवाद सम्पूर्ण विश्व में विद्युत वेग से फैल गया। तब से काफी दिनों तक स्वामीजी ने अमेरिका तथा यूरोप के विविध नगरों का दौरा कर वेदान्त के उदार धर्म का प्रचार किया और साथ ही भारत के अपने कार्य के लिए धन-संग्रह का भी प्रयास वे करते रहे। उनके

क्रिया-कलापों के संवाद समाचारपत्रों में निरन्तर निकलते रहते थे। तीन वर्षों से भी अधिक काल तक पश्चिम में कार्य करने के पश्चात् स्वामीजी १८९७ ई० की जनवरी में भारत लौटे। सारा भारत अपने इस वीर नायक का स्वागत करने को उठ खड़ा हुआ।

श्री टाटा ने अवश्य स्वामीजी से सम्बन्धित ये संवाद अत्यन्त उत्सुकता के साथ पढ़े। स्वामीजी के साथ जहाज में हुई बातें उनके मन में घर कर गयी थीं। कई वर्षों तक गंभीरतापूर्वक सोच-विचार करने के पश्चात् उन्होंने भारत में उपयोगी शिक्षा के विस्तार के निमित्त एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करने का निश्चय किया। १८९८ ई० के सितम्बर में जब उन्होंने अपनी इस योजना की घोषणा की तो सम्पूर्ण भारत में एक हलचल-सी मच गयी। प्रायः सभी समाचारपत्रों में यह एक चर्चा का विषय बनी। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने अपने २८ सितम्बर के अंक में इस विषय पर एक लेख प्रकाशित किया जिसका सार निम्नलिखित है—"बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायी मि० जे० एन० टाटा, विधिपूर्वक गठित एक कमेटी के हाथ में कुछ शर्तों के साथ अपनी तीस लाख की सम्पत्ति हस्तान्तरित करना चाहते हैं, जिसकी वार्षिक आय सवा लाख रुपये है। इस दान का उद्देश्य है--स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए एक संस्था की स्थापना। उद्योग तथा वाणिज्य की उन्नति के लिए उच्च शिक्षा का काफी महत्व है—मि० टाटा की इस धारणा की बात सबको विदित है। इसके साथ ही वे इस देश की विश्वविद्यालयीय शिक्षा के उन्नयन के बारे में भी विचार कर रहे हैं। उनके मतानुसार प्रतिभावान युवक ही हमारे राष्ट्र की प्राकृतिक तथा अन्य सम्पदाओं का उद्धार व सदुपयोग कर सकते हैं तथा उद्योग व वाणिज्य की विविध समस्याओं के समाधान में आत्म-नियोग कर सकते हैं। इस देश के नवयुवकों को शोध-कार्य में नियोजित करने के लिए प्रयोगशाला तथा ग्रन्थालय स्थापित करने की आवश्यकता है, जहाँ पर कि छात्रगण शिक्षकों के निर्देशन में उक्त कार्य का सम्पादन करेंगे।"

उन दिनों अर्थात् अब से लगभग एक सदी पूर्व ३० लाख रुपये एक बड़ी रकम थी और वह भी जमशेदजी की योजना का प्रायः एक तिहाई भाग ही थी। बाकी रकम के लिए उन्होंने सरकार तथा जनता से अपील की थी। इस अपील के उत्तर में मैसूर के महाराजा ने साढ़े पाँच लाख रुपये, एक लाख का वार्षिक अनुदान तथा ३०० एकड़ भूमि दान करने का वचन दिया था। सर दोराबजी टाटा का कथन है कि उनके पिता सरकार का नीरस रुख देखकर निराश हो गये थे और उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से इस सम्बन्ध में जनजागरण के निमित्त एक पुस्तिका लिखने का आग्रह किया। २३ नवम्बर, १८९८ ई० को एस्प्लेनेड रोड, बम्बई से लिखा श्री टाटा का पत्र इस प्रकार है—

"प्रिय स्वामी विवेकानन्द,

आशा है आपको जापान से शिकागो तक के अपने इस सहयात्री की याद होगी। आपके वे विचार मुझे अब विशेष रूप से स्मरण हो रहे हैं कि भारतवर्ष में त्याग-तपस्या का जो आदर्श पुनः जागृत हो रहा है, हमारा उद्देश्य उसे नष्ट करना नहीं है, बल्कि उसे रचनात्मक पथों पर परिचालित करने की विशेष आवश्यकता है।

अपने विज्ञान शोध-संस्थान के संदर्भ में ही मैं आपके उन विचारों का स्मरण कर रहा हूँ जिसके बारे में आपने अवश्य ही सुना या पढ़ा होगा। मेरी राय में यदि ऐसे आश्रमों या आवास-गृहों की स्थापना की जाय, जहाँ कि त्याग-व्रत धारण करनेवाले सादा जीवन बिताते हुए, भौतिक व मानवीय विज्ञानों की चर्चा में अपना जीवन उत्सर्ग कर दें, तो त्याग भावना की इससे अच्छी उपयोगिता संभव नहीं है।

मुझे लगता है कि इस तरह के जेहाद का उत्तरदायित्व यदि कोई योग्य नेता उठा ले तो इससे धर्म व विज्ञान दोनों की ही प्रगति होगी तथा हमारे देश की कीर्ति भी फैलेगी। इस अभियान को विवेकानन्द से बढ़कर और कौन नेतृत्व दे सकेगा? क्या आप इस पथ

पर हमारी राष्ट्रीय परम्पराओं को नवजीवन प्रदान करने में आत्म-नियोग कर सकेंगे ? इस दिशा में जन-जागरण लाने के निमित्त संभवतः सर्वप्रथम आप अपनी अग्निमयी वाणी में एक पुस्तिका लिखेंगे जिसके प्रकाशन का व्यय-भार मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।

ससम्मान,　　　　　　　　　　आपका विश्वस्त
जमशेदजी एन० टाटा

इस पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने क्या लिखा, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु लगभग दो माह बाद ही जनवरी (१८९९ ई०) के अन्तिम सप्ताह में जमशेदजी के निकट सहयोगी व सलाहकार श्री बरजोरजी पादशाह स्वामीजी से मिलने को बेलुड़ मठ आये थे। वे इस शैक्षणिक परियोजना के सिलसिले में अमेरिका व यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों का दौरा कर चुके थे, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि श्री टाटा ने ही स्वामीजी का उत्तर पाकर इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने को उन्हें बेलुड़ मठ भेजा था। उनके बीच हुई चर्चा का विवरण हमें मालूम नहीं, परन्तु इस मुलाकात के कुछ काल बाद ही स्वामीजी द्वारा संस्थापित अंग्रेजी मासिक के अप्रैल (१८९९ ई०) के अंक में इस विषय पर एक सम्पादकीय प्रबन्ध निकला। यह लेख भगिनी निवेदिता ने संभवतः स्वामीजी के ही निर्देश पर लिखा था। 'मि० टाटा की परियोजना' शीर्षक उस प्रबंध का सार-संक्षेप इस प्रकार है—

"यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है, प्रगति करना है और पृथ्वी के अग्रगण्य राष्ट्रों की पंक्ति में अपना स्थान ग्रहण करना है, तो सर्वप्रथम हमें अपनी खाद्य समस्या को हल करना होगा। और इस तीव्र प्रतियोगिता के युग में मानव जाति के दो प्रमुख अन्न-दाताओं कृषि और वाणिज्य के अंग-प्रत्यंग में आधुनिक विज्ञान का प्रकाश लाना ही इस समस्या का एकमात्र समाधान है। आजकल दिन-पर-दिन मानव के हाथ में नये-नये यन्त्र जुड़ते जा रहे हैं, जिनके साथ कार्य करने की प्रतियोगिता में हमारे पुराने तरीके नहीं टिक सकेंगे। जो लोग अपने बुद्धि-बल के द्वारा कम-से-कम शक्ति व्ययकर प्रकृति का अधिक-से-अधिक दोहन नहीं कर सकेंगे, उनकी उन्नति का पथ अवरुद्ध है, उनके भाग्य में पतन और विनाश ही लिखा है। उनके बचने का कोई भी उपाय नहीं।

"मि० टाटा की परियोजना भारतवासियों के हाथ में प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान प्रदान करने का पथ प्रशस्त करती है। प्रकृति निर्माणकर्त्री तथा ध्वंसकर्त्री दोनों ही है। वह उत्तम सेविका के साथ ही कठोर शासिका भी है, जिसका ज्ञान पाकर वे संभवतः उस पर नियंत्रण करके जीवन संग्राम में सफल होंगे। किसी-किसी का मत है कि यह योजना हवाई किले के समान काल्पनिक है, क्योंकि इसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए लगभग ७४ लाख की विपुल धनराशि की आवश्यकता है। इस आशंका का उपयुक्त उत्तर यह है कि यदि एक व्यक्ति जो देश में सबसे धनी न होते हुए भी अकेले ३० लाख की रकम दे सकते हैं, तो क्या अन्य देशवासी मिलकर बाकी धनराशि नहीं जुटा सकेंगे ? ऐसा सोचना अनुचित होगा क्योंकि हमें विदित है कि यह योजना कितने महत्व की है।

"हम पुनः दुहराते हैं—आधुनिक भारत में सारे देश के लिए इतनी कल्याणकारी योजना अभी तक देखने में नहीं आयी है। अतः सभी देशवासियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने जातिगत व संप्रदायगत स्वार्थों से ऊपर उठकर इसे सफल बनाने में योग दें।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी ने अपनी प्रमुख शिष्या भगिनी निवेदिता को इस कार्य में उत्साहित किया था और बाद में चलकर भी उन्होंने इस योजना में काफी सहायता की थी। ब्रिटिश सरकार और विशेषकर लार्ड कर्जन इस योजना के विरोधी थे। अतः सरकार का अनुमोदन पाने के निमित्त श्री टाटा इंग्लैंड गये और भगिनी निवेदिता से मिले। भगिनी ने श्रीमती ओली बुल के साथ एक डीनर पार्टी का आयोजन किया था, जिसमें इस स्कीम के बारे में चर्चा

करने को ब्रिटिश शिक्षा विभाग के सर जार्ज बर्डवुड को निमंत्रित किया गया था। इस वार्त्तालाप में जमशेदजी ने भाग लिया पर इससे भी सफलता न मिली। ब्रिटिश सरकार की टालमटोल की नीति देखकर भगिनी निवेदिता ने विश्व के विशिष्ट बुद्धिजीवियों के नाम एक अपील जारी कर इस विषय में जनमत पैदा करने का प्रयास किया था। प्रसिद्ध दार्शनिक विलियम जेम्स तथा शिक्षाविद् पेट्रिक गेडेस ने इस संबंध में अपने अभिमत भी भेजे थे। १८९८ ई० में प्रथम परिचय के बाद से ही १८ मई, १९०४ को श्री टाटा का देहावसान होने तक तथा उसके पश्चात् भी इस परियोजना को भगिनी निवेदिता की सहानुभूति तथा सक्रिय सहयोग प्राप्त होते रहे।

जमशेदजी टाटा के देहावसान के बाद जब सरकारी समाचारपत्र 'पायोनियर' ने उन पर कटाक्ष करते हुए लिखा कि टाटा का असल उद्देश्य सरकार की सहायता लेकर अपना पारिवारिक ट्रस्ट बनाना था, तो भगिनी निवेदिता ने उसका गंभीर प्रतिवाद करते हुए 'स्टेट्समैन' में लिखा था—"दो वर्ष पूर्व इण्डिया ऑफिस के सदस्यों तथा अन्य लोगों के बीच टाटा स्कीम को लेकर जो कान्फ्रेंस हुए, मुझे उनमें से बहुतों में उपस्थित रहने का अवसर मिला था। ...सरकार ने एक बार सन्देह व्यक्त किया कि मि० टाटा द्वारा प्रस्तावित संपत्ति का मूल्य कम पड़ सकता है, पर श्री टाटा के मतानुसार इसके उलटा होने की संभावना ही अधिक थी। परन्तु सरकार को सन्तुष्ट करने के लिए श्री टाटा ने अपने पुत्रों की पूर्ण सहमति लेकर निश्चित किया कि विश्वविद्यालय के लिए प्रस्तावित पूर्वोक्त दान को निरापद करने के लिए वे और भी तीस लाख की सम्पत्ति सुरक्षित कर देंगे, जो कि उनके परिवार के लिए प्राप्य थी। इससे यह सिद्ध होता है कि वे सरकार को एक ऐसी योजना में खींचना चाहते थे, जो देश की भलाई के लिए थी और इसके लिए वे अपने बाल-बच्चों को भूखमरी तक का शिकार बनाने को राजी थे।"

स्वामी विवेकानन्द जी की एक अन्य अमेरिकन शिष्या जोसेफिन मैक्लाएड ने बम्बई में जमशेदजी से मुलाकात करने के पश्चात् स्वामीजी को एक पत्र लिखा था, जिसके उत्तर में उन्होंने १७ फरवरी, १९०१ ई० को बेलुड़ मठ से लिखा था—"अभी-अभी तुम्हारा लम्बा-सा पत्र मिला।...मुझे प्रसन्नता है कि तुम श्री टाटा से मिली हो और तुम्हें वे दृढ़ और भलेमानुष प्रतीत हुए हैं। यदि मैंने अपने आपको काफी सशक्त अनुभव किया, तो अवश्य ही बम्बई आने का निमंत्रण स्वीकार कर लूँगा।" पर स्वामीजी का स्वास्थ्य बम्बई जाने के उपयुक्त न हो सका था।

सरकारी विरोध के कारण राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की यह योजना काफी काल तक खटाई में पड़ी रही। लार्ड कर्जन के इंग्लैण्ड वापस चले जाने पर १९०५ ई० में लार्ड मिण्टो गवर्नर जनरल होकर भारत आये और १९०९ ई० में उन्होंने इस संस्थान के लिये अपनी स्वीकृति दे दी। १९११ ई० के प्रारम्भ में इस 'इण्डियन इन्स्टीच्यूट ऑफ साइन्स' के भवन की नींव मैसूर के तत्कालीन महाराजा के हाथों रखी गयी और जमशेदजी टाटा के पुत्रों ने अपने पिता के इच्छानुसार इस कार्य को पूरा किया। भवन-निर्माण के पश्चात् उसी वर्ष की २४ जुलाई से विद्यार्थियों का प्रवेश भी आरम्भ हो गया। बंगलोर से पाँच किलोमीटर पश्चिम में अवस्थित यह संस्थान आज भी सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में इंजीनियरी व प्रौद्योगिकी के शिक्षण व शोध का प्रमुख केन्द्र है। यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि इसने राष्ट्रोत्थान के लिए उपयोगी शिक्षा के प्रचार में ऐतिहासिक कार्य किया है। यद्यपि इस यज्ञ के ऋषि स्वामी विवेकानन्द तथा ऋत्विक जमशेदजी टाटा अपने जीवनकाल में इसे क्रियाशील न देख सके थे, परन्तु भगिनी निवेदिता ने अवश्य अपने जीवन के सांध्यकाल में भारतीय विज्ञान की उन्नति के इस यंत्र को कार्यरत देखकर ही अंतिम सांस ली थी।

★

हृदय परिवर्तन

प्रो० अशोक कुमार पाण्डेय
एम, ए०

[इस कहानी में लेखक ने तथ्य को कल्पना एवं कला के रंग से भरकर चारुता प्रदान की है। —सं०]

गेहुआं श्यामल रंग, सुदृढ़ सुगठित दिव्य कान्ति युक्त शरीर, नुकीली नासिका, प्रशस्त ललाट और सामान्य मानव की कल्पना से दूर कहीं शून्य में किसी अदृश्य को टटोलती आँखें। गैरिक वस्त्रधारी वे संन्यासी खेतड़ी महाराज के अतिथि थे। महाराज की पारखी आँखों ने एक ही नजर में उनके असामान्य व्यक्तित्व में अलौकिकता का आभास पा लिया था। जब वे बोलते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानो उनका वार्त्तालाप कोरा वाग्जाल नहीं अपितु, आत्मानुभूति द्वारा अर्जित ज्ञान की अभिव्यक्ति है। वे सामान्य साधु वेशधारी भिखमंगों की तरह "महाराज की जय हो" कहकर मात्र टके बटोरने वाले नहीं थे। वे तो बिना पूछे अपना परिचय तक देने वाले भी नहीं थे। किन्तु आत्मज्ञान से उद्भासित मौन मुखमंडल बहुत कुछ बिन कहे भी कह देता था। चाटुकारिता न उनके रक्त-मांस में थी, न हीं वे वैसा अभिनय ही करते थे। वे तो स्पष्ट रूप से सीधी सच्ची बात कहना जानते थे। महाराज को उनकी दिव्यता एवं अलौकिकता ने अभिभूत कर रखा था।

संध्या का समय। सूर्य की रक्ताभ रश्मियाँ आकाश के पश्चिमी छोर में शनैः-शनैः विलीन होती जा रही थीं। दूर-दूर तक तम्बुओं और कनाटों का समूह फैला था। यद्यपि उन युवा संन्यासी का तम्बू सबसे अलग कुछ हटकर था। किन्तु महाराज, उनके दरबारियों, एवं विशिष्ट अतिथियों के तम्बुओं के कोलाहल से वे अनभिज्ञ नहीं। महाराज अपने राजमहल से दूर जयपुर के महाराजा के यहाँ आये हुए हैं। महाराज के आग्रह पर वे साधु भी आये थे। किन्तु उस वैभवपूर्ण वातावरण में भी वे सबसे हटकर ही थे। उनकी हालत वही थी "भीड़ में भी रहता हूँ वीरान के सहारे, जैसे कोई मन्दिर किसी गाँव के किनारे"। वैसे भी जिसने विशुद्ध आचरण की आचार-संहिता पढ़ ली हो उसके लिए निःसार ही थे संसार के दिखावे। वे रमते राम अपने आप में मगन थे। तभी महाराज का संदेश-वाहक दौड़ता हुआ आया। उस समय साधु वाह्यज्ञान शून्य अपने आप में तल्लीन थे। साधु के गम्भीर मुख-मंडल से विकीर्ण होती स्नेह, शांति एवं करुणा की रश्मियों ने कुछ देर के लिए उसे किसी इन्द्रजाल-सा बाँध दिया। किन्तु कुछ देर बाद वह बोला, "बाबाजी! महाराज साहब ने रात्रि के प्रथम प्रहर में होने वाले आयोजन में सम्मिलित होने के लिए आग्रह किया है।" संदेशवाहक की बात सुन साधु का ध्यान भंग हुआ और वे बोले ··· ····"क्या कहा तुमने?" संदेशवाहक ने दूर लगे एक विशाल शामियाने को ऊँगली के इशारे से दिखाते हुए कहा, "आज वहाँ एक ख्याति-लब्ध नर्तकी के नृत्य का आयोजन है। बड़े-बड़े राजे-रजवाड़े आये हैं। नृत्य के बाद भोज और विभिन्न उत्सव होंगे। आपकी वहाँ उपस्थिति के लिए महाराज अत्यधिक इच्छुक हैं। यही निवेदन करने के लिए मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।" युवा संन्यासी की मुखमुद्रा गम्भीर हो उठी और सहसा वे अपने आप से कहने लगे—"नृत्य और संन्यासी ······संन्यासी और नर्तकी! कहीं सामांजस्य तो

नहीं दिखाई देता।" लेकिन अपने मन में आये इस अन्तर्द्वन्द्व को उन्होंने शीघ्र ही समाप्त कर दिया, और अपने निर्णय से सेवक को अवगत कराते हुए दृढ़तापूर्वक कहा, "महाराज से कह देना, साधु भी कहीं दुनियावी राग-रंगों में शरीक होता है? मैं विलासिता से संपृक्त इस आयोजन में उपस्थित होने में असमर्थ हूँ।" सेवक चला गया। संन्यासी सोचते रहे "नर्तकी की वासनामयी भाव-भंगिमाओं में, उसके लास्य एवं अंग संचालन में मैं वीतरागी कौन-सा सुख पाऊँगा!" ..

नर्तकी महाराज के खेमे में उनके परिपार्श्व में बैठी उनके शिष्ट हास्य का आनन्द ले रही थी। इसी समय सेवक ने पहुँचकर संन्यासी के उत्तर से उन्हें अवगत कराया। साधु का संदेश उसे प्रियकर नहीं प्रतीत हुआ। कुछ देर के लिए वह हतसंज्ञ हो गयी। किन्तु थोड़ी देर बाद अचानक उसके हृदय में प्रचण्ड क्रोध उत्पन्न हुआ। वह क्रोधाभिभूत हो सोचने लगी "एक सामान्य साधु और मेरा तिरस्कार। बड़े-बड़े राजा-महाराजा मेरे एक ईशारे पर सबकुछ न्योछावर करने को तैयार रहते हैं— किन्तु यह साधु।' किन्तु क्षण भर में ही उसका पूर्वभाव तिरोहित हो गया और वह सोचने को बाध्य हुई —"नहीं; यह साधु सामान्य नहीं" ये सामान्य लोगों से कहीं ऊँचे हैं।" वह क्या जानती थी कि वे ऊँचे ही नहीं अपितु ऊँचाई के लिए निर्धारित मानदण्ड से भी ऊपर हैं। "मेरी हार मेरे रूप की, मेरी कला की हार है। किन्तु संन्यासी तो मेरे रूप के वशीभूत होने से रहा! उसे उसके ही दाँव पर हराना होगा, उसके स्वयं के आदर्श पर पराजित करना होगा। संन्यासी भक्त है, निर्मल हृदय है, ज्ञानी है। उसे भक्ति, ज्ञान और आत्मोत्सर्ग के आधार पर ही प्रभावित करना होगा।" नर्तकी ने अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने की मन-ही-मन ठान ली। महाराज बैठे-बैठे —उसके चेहरे पर प्रतिबिम्बित मन के अन्तर्द्वन्द्व को पढ़ने का प्रयास कर रहे थे किन्तु चेहरे की भाषा उनकी मनीषा के परे थी। महाराज ने हँसकर पूछा, "क्यों सुन्दरी! तुम्हारे चेहरे पर आकस्मिक गम्भीरता क्यों?" नर्तकी ने चेहरे पर कृत्रिम मुस्कुराहट लाकर कहा—कुछ नहीं महाराज, मन में कुछ बातें अनायास ही आ गयी थी। महाराज ने कहा —"यह अपरूप रूप गम्भीरता का बाना ओढ़ विकृत हो जाने के लिए नहीं, बल्कि दूसरों के मन को आन्दोलित करने के लिए है।" नर्तकी ने महाराज की बातों को मन में महत्व न देते हुए भी कहा—"अच्छा महाराज।" महाराज बाहर से आये अतिथि अभ्यागतों की व्यवस्था देखने चले गये।

संध्या रात्रि में ढल गयी थी। वसन्त का प्रथम चरण यानी फागुन का पूर्वार्द्ध। फगुनाहट की मदमाती बयार मन प्राणों में मादकता का संचार कर रही थी। नर्तकी अपने खेमे में दर्पण के सामने सज-धज रही थी। किन्तु रोज की तरह उसने भड़कीला शृंगार नहीं किया, अपितु हल्के धानी रंग की साड़ी, चंदन के रंग का टीका और बालों में सामान्य-सा गजरा। न जाने उसके चेहरे पर हमेशा नृत्य करनेवाली वासना कैसे उस दिन समाप्त हो गयी है। घुँघरू बाँधते समय जब उसने अपना चेहरा उठाया तो दर्पण में अपनी छवि देख वह स्वयं भी इस परिवर्त्तन पर आश्चर्यचकित हो उठी। उस दिन वह साक्षात् सरस्वती की प्रतिमूर्त्ति हो रही थी। किन्तु उसके मन में बार-बार यही विचार उठता "नृत्य करते समय संन्यासी को बुलाना है किसी भी तरह से, किन्तु कैसे?" सहसा उसे अपने कला-गुरु दिवंगत वीरेश्वर महाराज का यह कथन-स्मरण हो आया "नृत्य में देवता का वास होता है, बेटी। जिस दिन तुम अपने अभ्यंतर के उस देवता को पहचान लोगी उस दिन महाभाव की अवस्था को प्राप्त कर लोगी और तब तुम्हारे लिए रूप-यौवन का व्यापार महत्वहीन हो जायेगा।" किन्तु किशोरावस्था के उन्माद में उसने अपने गुरु की कही अनकही कर दी थी। किन्तु आज। आज तो रह-रहकर उनकी बात याद आ रही थी। घुँघरू बाँधने का कार्य समाप्त ही हुआ था कि सेवक ने आकर कहा, "महाराजा सहित अतिथिगण आयोजन-स्थल पर उपस्थित हो चुके हैं, बाईसाहिबा! जल्दी

चलिए। सब लोग व्यग्रता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" विचारमग्न नर्तकी ने कहा, "चलो मैं चलती ही हूँ।" न जाने क्यों नर्तकी उस दिन अपने को चपल नहीं बना पा रही थी। वह धीरे से उठी और सर झुकाये हुए विचारमग्न मंथर गति से आयोजन-स्थल की ओर चल पड़ी जहाँ विशाल जनसमुदाय-उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। चलने पर उसके पैरों में लिपटे घुँघरू की आवाज रात्रि के अन्धकार में दूर बजती किसी मन्दिर की घण्टियों-सी लग रही थी।

आयोजन-स्थल पर पहुँचते ही जनता ने हर्षध्वनि से उसका स्वागत किया। किन्तु आज इन भौंरे-रसिकों की किसी भी चेष्टा ने उसे प्रभावित नहीं किया। उसके मन-मन्दिर में संन्यासी का केशरिया वस्त्रधारी दिव्य रूप एवं निश्छल दृष्टि नाच रही थी जिसे उसने आते समय दूर टहलते देखा था। लगता था भेड़ों के झुण्ड से अलग एक शेर विचर रहा हो।

दर्शकों की ओर से किसी गरमागर्म गाने की फरमाइश हुई। किन्तु आज जैसे दर्शकों में रहकर भी वह उनसे दूर थी। उसके कण्ठ से स्वतः ही महात्मा सूर का यह भजन निकल पड़ा—

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई तो पार करौ
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर वधिक परौ।
सो दुविधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ
जब मिलि गये तबएक बरन ह्वै सुरसरि नाम परौ।
तन माया ज्यों ब्रह्म कहावत सूर सु मिलि बिगरौ
कै इनको निरधार कीजिये, कै प्रन जात टरौ॥

दूर टहलते संन्यासी के कानों में जब यह आवाज पहुँची तब उनके हृदय में सहसा एक नवीन विचार उठा "मैं अद्वैतवादी संन्यासी और मुझमें ही द्वैतभाव! उस गणिका में भी तो उसी परमात्मा का वास है! उसकी आत्मा से मेरी आत्मा भिन्न नहीं। ठाकुर (रामकृष्ण परमहंस) को तो मथुर बाबू जब वेश्याओं के मुहल्ले में ले जाते थे तब उन्हें भाव-समाधि लग जाया करती थी। उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगता था और वे कह उठते थे "माँ तुम्हारे कितने रूप हैं, तुम किन-किन रूपों में कहाँ-कहाँ विराजमान हो इसका पता नहीं। मैं उसी परमहंस का शिष्य हूँ। तब मेरे मन में वेश्या का मांसल सौन्दर्य विकार कैसे उत्पन्न कर सकता है? अगर मैं वहाँ नहीं जाता तब सिद्धान्त और कर्म से एक नहीं। यह मेरी आन्तरिक दुर्बलता का चिह्न है और उस पर यह स्वर! यह तो किसी गणिका की नहीं किसी साधिका, किसी उपासिका की पुकार-सी प्रतीत हो रही है।"

साधु अपने आप रंगभूमि की ओर चल पड़े, किसी यन्त्रचालित मानव की तरह। जैसे कोई दैवी शक्ति उन्हें अपनी ओर खींच रही हो। वे देख नहीं रहे थे, उनके मन में तो बार-बार यही पंक्ति—"इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो·· ·····

सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरो" गूँज रही थी संन्यासी विचारमग्न मुद्रा में रंगभूमि में पहुँचे। उन्हें देखते ही महाराज सम्मान प्रदर्शित करते हुए उठ खड़े हुए और अपने पास ही साधु को उच्चासन प्रदान किया।

उधर संन्यासी को देखते ही न जाने नर्तकी के भीतर किस शक्ति का संचार हुआ और वह सुध-बुध खोकर नृत्य करने लगी। उसके गायन में प्रायश्चित की ध्वनि थी, उसके अंग-संचालन में उसका आत्म-समर्पण था और इस वाक्य को ·····"यह दुविधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो," जब उसने गाया तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह उसके आतुल अन्तःकरण का आत्मनिवेदन है। आज के नृत्य में उसे तालियों की गड़गड़ाहट और 'वाह! वाह!' का प्रोत्साहन नहीं मिल रहा था और आज वह ऐसी अपेक्षा लेकर नृत्य भी नहीं कर रही थी। उसे तो स्वयं भी पता नहीं था कि वह कैसे यह सब करती जा रही थी। आज लोगों को होश ही नहीं था कि वे ताली बजाएँ। लोग जड़वत् थे। आज उसने उपस्थित जन-समुदाय को

अपने भावों को विशुद्ध गंगधार में बहा दिया था। वस्तुतः तालियाँ तब बजती हैं जब मनुष्य की चेतना सामान्य धरातल पर रहती है। यहाँ तो दर्शक दूसरे लोक में पहुँच चुके थे। नृत्य पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। नाचते-नाचते जब उसने करबद्ध हाथों से प्रार्थना का भाव दिखाते हुए जरा-सा शीश झुकाकर— "प्रभु मेरो अवगुन चित न धरो" गाया, उसका स्वर भावातिरेक से काँप रहा था। उसके गुँथे हुए केश-पाश बिखर गये थे और उसमें संगुम्फित गजरा छिटक कर भूशायी हो गया था। अपने नृत्य एवं गायन को विराम देने के क्रम में अंत में जब उसने भजन की विभिन्न पंक्तियों के भावों को प्रसंगानुसार अपने भावों द्वारा प्रस्तुत करते हुए, अंतिम पंक्ति "कै इनको निरधार कीजिए, कै प्रनजात टरो" को गाते हुए, अंग संचालन द्वारा नृत्य की मुद्रा में दोनों पैरों को मोड़कर किसी देव-मन्दिर की देहरी पर शीश टेकने का अभिनय किया, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अपने अदृश्य देवता की देहरी पर माथा टेक रही हो। नृत्य की समाप्ति के साथ ही वह नृत्यभूमि में बेसुध हो लुढ़क गयी।

उस दिन ऐसा लग रहा था जैसे सचमुच उसने अपने अभ्यन्तर के देवता को पा लिया है। सभा सन्न रह गयी। महाराजा के सेवक जलपात्र ले नर्तकी के मुँह पर छींटा मार उसे होश में लाने का प्रयास कर रहे थे। लोगों को यह देख आश्चर्य हुआ कि महाराजा की बगल में बैठे साधु की आँखों से आंसुओं की अविरल धार बह रही थी। महाराजा हतप्रभ थे संन्यासी की आँखों में आँसू देख।

थोड़ी देर बाद नर्तकी को होश आया। साधु की इस करुणामयी मूर्त्ति को देख वह उनके पास द्रुतगति से पहुँची और उनके चरणों में अपना मस्तक रख दिया। आज नर्तकी अपने हृदय के झंझावात में उमड़ते मेघों को बरसने से किसी भी तरह से रोक नहीं पा रही थी। उसकी आँखों से स्वतः ही आँसू निकल कर साधु के चरणों में अपना भावार्घ्य अर्पित कर रहे थे और संन्यासी की आँखों से टपकती हुई आँसू की बूँदें नर्तकी के मस्तक पर आशीष के सुमन-सी प्रतीत हो रही थीं। साधु प्रकृतस्थ हुए और बोल पड़े "माँ आज तुमने मेरी आँखें खोल दी। 'मैं साधु हूँ और औरों से विशिष्ट हूँ।' यह भावना तुम्हारे द्वारा ही दूर हुई है। सही अर्थों में मैं आज अद्वैतवादी बना हूँ। जो सर्व-भूतों में परमात्मा को नहीं देखता वह अद्वैतवादी कैसा? और फिर तुम तो आज मेरी शिक्षा गुरु हो।" गणिका ने कहा "प्रभु! मैं आपको हराने चली थी, लेकिन आपकी दिव्यता ने मेरे अन्तस् के कलुष को धो दिया। आज मैंने अपने गुरु आचार्य वीरेश्वर द्वारा उल्लिखित महाभाव की अनुभूति की है। एक दिन मैंने वैभव के चाकचिक्य में उनके आदेश की उपेक्षा कर दी थी, किन्तु आज आपने मेरी आँखें खोल दी। आज तक मैं पाप के पंक में डूबी, रुपयों के लिये नाचती थी। किंतु अब? अब मैं क्या करूँ? क्या मेरे उद्धार का भी कोई मार्ग है भगवन्? मैं तो इतनी पतिता हूँ कि मुझे इस दलदल से निकालने का कोई उपाय ही नहीं दिखाई देता।" साधु ने अपने धीर गम्भीर स्वर में कहा 'तुम पतिता कहाँ माँ, तुम्हारे प्रायश्चित के आँसुओं ने तुम्हारे हृदय को कल्मषशून्य कर दिया है। तुम मात्र अपने स्वरूप से अपरिचित थी, आज तुमने अपने स्वरूप को जान लिया है। और जिसने अपने स्वरूप को जान लिया वह भी कहीं पतित हो सकता है? संसार में कोई भी इतना नहीं गिर सकता कि उसका उत्थान ही सम्भव नहीं! तुम्हारा शरीर भले ही पतित हो किन्तु तुम्हारी आत्मा, वह तो शुद्ध एवं शाश्वत है।" साधु कुछ रुककर पुनः बोले, "सन्मार्ग की अनुगामिनी बनो। भगवत्-कृपा से सब कुछ तुम्हारे लिए हितकर ही होगा।"

वारांगना ने उसी दिन अपने ऐश्वर्य के सारे उप-करणों का परित्याग कर दिया और प्रभु की उपासिका बन गयी। एक नर्तकी से शिक्षा ग्रहण करने वाले वे अनजान अनाम साधु बाद में चलकर विश्व वन्द्य संत एवं युगाचार्य, महान् देशभक्त, करुणावतार स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। ◻

समाज परिवर्तन में दिव्यायन की भूमिका

स्वामी सोमेश्वरानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

पिछले चार दशकों से देश के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति परिलक्षित होने पर भी उसके साथ ही कुछ ऐसे संकट उत्पन्न हुए हैं कि जिनके कारण चिन्तनशील व्यक्ति देश की उन्नति के लिए किसी वैकल्पिक मार्ग का अनुसंधान कर रहे हैं। विशेषतया अत्यधिक राजनीतिकरण, दुर्निति, नैतिक मूल्यों का ह्रास, वैषम्य इत्यादि जिस प्रकार बढ़ रहे हैं, उससे आजकल 'मार्ग' का निर्धारण ही प्रमुख प्रश्न हो गया है। केवल लक्ष्य पर पहुँचना ही नहीं बल्कि किस प्रकार से उस लक्ष्य तक पहुँचा जा रहा है—यही चिन्ता क्रमशः तीव्रतर होती जा रही है। अवश्य ही पिछली शताब्दी में ही विवेकानन्द, रवीन्द्र नाथ जैसे मनीषियों ने उक्त विषय पर अपना व्यक्तिगत वक्तव्य प्रकट किया था। ब्रिटिश-शासन में गाँधीजी तथा आधुनिक भारत में मानवेन्द्रनाथ राय तथा जय प्रकाश नारायण ने देशवासियों की चिन्ता-धारा में एक नयी दिशा लाने का प्रयास किया था। अन्तिम दोनों का तात्विक चिन्तन अभी भी प्रासंगिक होते हुए भी उसका व्यावहारिक प्रयोग नहीं हुआ है। एम. एन. राय प्रवर्तित रैडिकल ह्यूमेनिष्ट आन्दोलन अब कतिपय बुद्धि जीवियों के तर्क का विषय बन कर रह गया है जो भारतीय मनीषियों की निन्दा में विशेष तत्पर हैं। जे. पी. के अनुयायीगण उनके मूल दर्शन पर ध्यान न देकर निर्वाचनोन्मुखी राजनीति की तरफ झुक पड़े एवं इस प्रकार एक सम्भावनापूर्ण कार्यक्रम कार्यान्वित होने से रुक गया।

आधुनिक-काल में विकल्प-मार्ग की खोज का प्रयत्न क्रमशः व्यापक हो गया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर कुछ अच्छे प्रबन्ध निकले हैं एवं प्रबन्ध लेखकों में विभिन्न वर्गों के व्यक्ति हैं। तात्विक दृष्टि से राजमोहन गाँधी, रजनी कोठारी एवं अशोक रुद्र ने जिस प्रकार अच्छे वक्तव्य दिये हैं, उसी प्रकार निखिल चक्रवर्ती ने भी चालू राजनिति की व्यर्थता को प्रकाशित किया है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से टैगोर सोसाइटी रामकृष्ण मिशन तथा नक्सलपन्थियों ने भी विकल्प मार्ग को दर्शाया है।

इस प्रबन्ध में विकल्प मार्ग के दिशा-निर्देश में रामकृष्ण मिशन अवदान का वर्णन है। इसी सन्दर्भ में राँची में अवस्थित रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित दिव्यायन की बातों का विवेचन हम लोग करेंगे। यद्यपि पश्चिम बंगाल, बिहार, तामिलनाडु, मध्यप्रदेश और आन्ध्र-प्रदेश में इस विषय पर मिशन के कार्यों ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है, फिर भी केस स्टडी (अवस्था-अध्ययन) के रूप में यहाँ राँची आश्रम की बात ही कही जायेगी। यह आश्रम छोटानागपुर के पिछड़े-वर्ग के लोगों के बीच कार्य कर रही है। आदिवासी तथा हरिजनों के अन्यान्य प्रतिष्ठान एवं राजनैतिक दल भी इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इनमें तथा रामकृष्ण मिशन के दृष्टिकोण तथा कर्मधारा में क्या अन्तर है, इसका भी प्रसंग क्रम में विवेचन होगा।

विवेकानन्द प्रदर्शित मार्ग —पिछले चार दशकों से राजनीति जिस मार्ग से चल रही है उससे प्रत्याशित फल प्राप्त नहीं हो रहा है। इस बात को चिन्तनशील व्यक्ति एवं राजनीतिक नेताओं ने भी क्रमशः स्वीकार किया है। ऐसा क्यों हुआ? राजनीति को प्रधानता देकर कार्य करना मूलतः पाश्चात्य विचारधारा है। इसके विपरीत भारतीय इतिहास में समाजनीति ने ही राजनीति को परिचालित किया। पाश्चात्य की भांति

ही भारतीय राजनैतिक दलों ने भी, पहले शासन क्षमता पर आधिपत्य (निर्वाचन या हिंसात्मक उपाय द्वारा) प्राप्त करके समाज का पुनर्गठन करने पर जोर दिया। परन्तु स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय इतिहास के अनुसार समाज विप्लव पर जोर दिया। मनुष्य को शिक्षित एवं संगठित करके समाज-परिवर्तन के मार्ग में आगे नहीं बढ़ने से बलपूर्वक ऊपर से लादे हुए कार्यक्रमों के माध्यम से वास्तविक फल प्राप्त नहीं हो सकता—राम-कृष्ण मिशन दिव्यायन ने इसी नीति को प्रधानता देकर स्वीकार किया है।

इन मार्गों मे स्वामीजी ने जिन कर्तव्यों की बात की है उनमें तीन आधारस्तम्भ हैं—वन के वेदान्त को घर में लाना, लोक-शक्ति गठन एवं आध्यात्मिक विप्लव।

अद्वैत वेदान्त की मूल बात है, प्रत्येक मनुष्य ही असीम शक्ति का अधिकारी एवं अनंत संभावनाओं से युक्त है। स्वामीजी की इच्छा थी, उक्त वाणी को गाँव-गाँव के कृषक, मछुओं एवं मजदूरों तक पहुँचाया जाये। कैसे ? व्यावहारिक कार्य के माध्यम से मनुष्य जब अपनी आन्तरिक शक्ति का उद्घाटन करेगा एवं आपात कठिन समस्याओं का भी समाधान करेगा तभी सम्भव होगा।

द्वितीय, स्वामीजी ने कहा : जिस नयी शक्ति से नयी व्यवस्था उत्पन्न होगी वह लोक-शक्ति कहाँ है ? पहले उस लोक-शक्ति का गठन करो। उन्होंने अपनी इस वाणी द्वारा समाज व्यवस्था में व्यक्ति-साधना को समष्टि-साधना में विलीन करने का आह्वान किया।

तृतीय : आध्यात्मिक क्रांति की आवश्यकता पर स्वामीजी ने बल दिया। इसका अर्थ हरिसभा की स्थापना अथवा नाम-कीर्तन की व्यवस्था नहीं है, इसका तात्पर्य है आत्मशक्ति-साम्यबोध, मननशीलता एवं चेतना का जागरण। इसको अन्य भाषा में सांस्कृतिक परिवर्तन कहा जा सकता है।

उक्त तीनों मार्गों की सहायता से स्वामीजी ने समाज परिवर्तन तथा मनुष्य के जागरण की बात कही हैं। दैहिक, मानसिक, आत्मिक—इन तीन स्तरों में जागरण होने पर व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है। स्वामीजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर ही राँची के रामकृष्ण मिशन दिव्यायन ने अपने कार्यक्रम की रचना की है। इस तात्विक आधार का आश्रय ले कर इस संस्था ने जो वास्तविक कार्यक्रम स्वीकार किया है, उसकी विवेचना से ही समाज परिवर्तन के वैकल्पिक उपाय का रूप स्पष्ट हो जायेगा।

दिव्यायन की कार्यनीति : छोटानागपुर के आदिवासी एवं हरिजन वर्गों में ही दिव्यायन का कार्य चल रहा है। कृपक, मछुआरे एवं खेत-मजदूरों पर अधिक ध्यान दिया गया। जिनके पास एक एकड़ अथवा उससे कम जमीन हैं उनको सिखाया जा रहा है वैज्ञानिक प्रथा से किस प्रकार कम जमीन में अधिक फसल उगायी जा सकती है। इसी उद्देश्य पर आधारित राँची रामकृष्ण मिशन आश्रम में एक कृषि विज्ञान केन्द्र है। साधारण किसान विशेषतः तरुण एवं युवक यहाँ निःशुल्क प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, उनके खाने एवं रहने की व्यवस्था भी निःशुल्क होती है। ८% स्थान पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित हैं। बिहार के छात्र ही अधिक हैं। फिर भी कुछ सीटें प० बंगाल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, अरुणांचल प्रदेश एवं मणिपुर के लिए आरक्षित हैं। कृषि-विज्ञान केन्द्र के साथ छोटा औद्योगिक शिक्षा-केन्द्र भी है। यह विशेषतया भूमिहीन ग्रामीण मनुष्यों के लिए है तथा यहाँ भी आदिवासी एवं हरिजन तरुणों को प्रमुख अधिकार दिया गया है। औद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र में मुर्गी-पालन दुग्धशाला, मधुमक्खी-पालन बढ़ईगिरी, फार्म-मशीनरी, यन्त्र-निर्माण इत्यादि की व्यवस्था है। सभी शिक्षार्थी बिना खर्च के शिक्षा, आवास एवं भोजन प्राप्त करते हैं।

शिक्षा प्रदान करने के दो उद्देश्य हैं—आर्थिक पुनर्गठन एवं संस्कृति की चेतना का विस्तार। इस विषय पर बाद में विवेचना की जायगी।

ट्रेनिंग प्राप्त करके अपने गाँवों में लौटकर छात्र जिससे वृहत्तर क्षेत्र में आत्म-नियोग कर सकें इसके लिऐं

पचास गावों में विवेकानन्द सेवा संघ स्थापित हैं। ट्रेनिंग प्राप्त किये हुऐ छात्रों को दो वर्षों के लिए इन सेवा संघों में कार्य करना आवश्यक है। ये पचास सेवा संघ गावों में जो कार्य करते हैं उनमें निम्न मुख्य हैं— रात्रि पाठशाला, ग्रामवासियों को विभिन्न प्रकार की ट्रेनिंग, गावों की उन्नति के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को चलाना, नये नेतृत्व की संरचना करना इत्यादि। विवेकानन्द सेवा संघ दिव्यायन मे प्राप्त शिक्षा को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है। दो वर्ष तक अनिवार्य कार्य करने हेतु उनके अन्दर सामाजिक प्रतिबद्धता की वृद्धि हो रही है। ये प्रशिक्षित व्यक्ति केवल अपने ही गाँवों में नहीं बल्कि निकटवर्ती गावों में भी कार्य का विस्तार कर रहे हैं एवं और भी अधिक संख्या में ग्रामीण मनुष्यों को सम्मिलित कर लोक-शक्ति को बढ़ाने में सहयोग प्रदान करते हैं।

इन कार्यों में इनकी सहायता के लिये रामकृष्ण मिशन की कुछ कार्यक्रमें है। जैसे—शिक्षार्थी सम्मेलन, लाब (laboratory) टू लान्ड (land) प्रोजेक्ट, पत्रिका प्रकाश, भ्रम्यमान ओडियोविजुअल युनिट इत्यादि।

स्वामी विवेकानन्दजी की इच्छा थी, समाज के परिवर्तन का उत्तरदायित्व किसी एक संस्था अथवा मुठ्ठी भर नेता के हाथों न रहकर जनसाधारण के उपर रहे। अग्रगामी अंश-प्रेरक की तरह कार्य करेंगें जो क्रमश: नये-नये नेताओं की सृष्टि करेगा। एवं इसी कारण वे चाहते थे जनसाधारण के द्वारा ही जन-साधारण की -मुक्ति की साधना। विवेकानन्द सेवा संघ केवल पच्चास गावों में स्थित होने पर भी इनका कार्य-क्षेत्र २१५ गावों में विस्तृत है। एवं गाँव के मनुष्यों मे एकता लाकर सामाजिक पुनर्गठन को सुदृढ़ किया है। इस प्रसंग पर बाद में आलोचना की जायेगी।

सामाजिक आन्दोलन क्यों? यह प्रश्न यहाँ किया जा सकता है कि राजनैतिक कार्यक्रमों को स्वीकार किये बिना समाज पुनर्गठन सम्भव है क्या? उत्तर में कहा जा सकता है—इस दिशा में रामकृष्ण मिशन विकल्प मार्ग पर अनुसंधान कर रही है एवं यही इसकी परीक्षा है। द्वितीयत:, इतने दिनों तक राजनैतिक कार्यकलापों की व्यर्थता ने मनुष्य के मन में नये विकल्प को ढूँढ निकालने के लिये बाध्य किया। तृतीयत:, बिहार के मनुष्यों में राजनीति अपनी विश्वसनीयता (Credibility) बहुत तेजी से खो रही है। समाजशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में जो अनुसंधान किया है उसमें देखा गया है कि बिहारी किसान राजनैतिक संगठनों पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। गाँव के मनुष्य प्रशासन एवं राजनैतिक नेताओं से असन्तुष्ट होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं शहर के मनुष्यों की भी यही दशा है। इस परिस्थिति में रामकृष्ण मिशन का विकल्प मार्ग ढूँढ निकालना महत्वपूर्ण है। इस देश में आलोचकों की कमी नहीं है। शिक्षित बुद्धिजीवी अधिकांश घर में बैठकर अन्य लोगों की समालोचना में जितना तत्पर रहते हैं कार्य के क्षेत्र में उतने ही कमजोर हैं। इस अवस्था में दिव्यायन विवेकानन्द प्रदर्शित मार्ग को वास्तव में बदलने का प्रयत्न कर रहा हैं।

कृषि एवं उद्योग : पहले ही कहा गया है कि दिव्यायन ने अपने कार्य के लिये साधारण किसान एवं खेतिहर मजदूरों को चुना है। प्रश्न यह उठता है कि भूमि संस्कार के लिए आन्दोलन संगठित क्यों नहीं किया जा रहा है? पहला कारण यह है कि सरकार एवं राजनैतिक दलों ने इस ओर ध्यान दिया है। इस अवस्था में रामकृष्ण मिशन को इस दिशा में शक्ति क्षय करने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी कार्यक्रम को ग्रहण करने से पहले सामाजिक वास्तविकता पर विचार करना आवश्यक है। जिन समस्याओं के समाधान के लिए अन्यान्य संगठन प्रयत्न कर रहे हैं उस तरफ शक्तिक्षय न करके अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को करना ही दिव्यायन प्रयोजनीय समझती है। दूसरा कारण यह है कि भूमि-संस्कार करने पर भी मूल समस्या का समाधान नहीं होगा। सभी बेनामी जमीनों को उद्धार करके एवं भूमि सीमा-व्यवस्था बहुत नीचे लाने पर भी जो जमीन प्राप्त होगी, उसे सभी भूमिहीन किसानों को देना सम्भव न होगा। जमीन जोतने वालों की (Land to the

tiller) इस नीति को अपनाने पर भी यह सम्भव नहीं होगा, क्योंकि इतनी जमीन हमारे देश में नहीं है। द्वितीयतः सभी को थोड़ी-थोड़ी जमीन देकर संतुष्ट करने पर वह अनर्थिक जोत (uneconomic holding) हो जायेगा। पश्चिम बंगाल की बात ही ले लीजिए। सरकारी प्रयास से यहाँ बहुत से भूमिहीनों को जमीन दी गयी, परन्तु देखा गया कि उन लोगों ने स्वयं खेती न करके अपनी जमीन मध्य अथवा उच्च वर्ग के किसानों को दे दी।

दिव्यायन ने जब अपना कार्य प्रारम्भ किया उस समय (१९६९ ई० में) बिहार के कुल श्रमिकों में ४३·३% कृषक एवं ३९% खेत मजदूर थे। यद्यपि सन् १९६८ में सी० पी० आई० ने पटना में खेत-मजदूरों की यूनियन की स्थापना की तथापि इस विषय को लेकर नेताओं में द्विधाबोध था। खेत-मजदूरों का अलग से संगठन होने से कृषक-गणों की पार्टी से हट जाने की आशंका सी० पी० आई० एवं सी० पी० एम० के थी। फलस्वरूप खेत-मजदूरों की विशेष उन्नत्ति हो सकी। इधर सन् १९६९ के दिसम्बर माह में केन्द्रीय स्वराष्ट्र मंत्रालय ने "वर्तमान कृषक विक्षोभ का कारण एवं प्रकृति" में जो विवरण दिया है उनमें चार कारणों का उल्लेख किया गया है—

(१) भूमि पर बाधारहित दखल और फसलों के न्यायपूर्ण हिस्सों के लिए रैयतों का दावा।

(२) मजदूरी बढ़ाने के लिए खेत-मजदूरों का प्रस्ताव।

(३) भूमिहीन खेत-मजदूरों एवं दरिद्र कृषकों की भूमि की मांग।

(४) अधिक जमीनों के मालिक एवं महाजनों के द्वारा शोषण के विरुद्ध आदिवासियों का क्षोभ।

इन परिस्थितियों में दिव्यायन जिन सिद्धान्तों पर पहुँचा वे हैं—

(क) दरिद्र एवं प्रान्तिक (साधारण) किसान को अधिक मजदूरी देना सम्भव न होने के कारण वैज्ञानिक विधि से उपज बढ़ाने की शिक्षा इनके लिए आवश्यक है।

(ख) खेतिहर मजदूर आन्दोलन द्वारा अधिक मजदूरी प्राप्त कर लेने पर भी अधिक समय कर्महीन ही रहते हैं। कर्म-संस्थानों की नयी व्यवस्था नहीं करने पर समस्या का समाधान न हो सकेगा।

आश्चर्यजनक बात यह है कि कोई भी राजनैतिक दल ने इन दोनों दिशाओं पर ध्यान नहीं दिया है तथा इनके समाधान की भी व्यवस्था नहीं की गयी। इन दलों की वक्तव्य है—राष्ट्र-यंत्र परिवर्तन करना, एवं जबतक यह प्राप्त न हो तबतक सरकार को माँग प्रेषित करना। इसके फलस्वरूप दो बड़ी समस्याएँ दिखाई देती हैं। प्रथमतः दैनन्दिन समस्या मिटाने की चेष्टा नहीं की जा रही है। द्वितीयतः गाँवों के मनुष्यों को सरकार एवं राजनैतिक दलों पर निर्भरशील एवं आश्रित रहना पड़ता है। हमने जो स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग को दर्शाया था उसके विपरीत शिखर पर राजनैतिक दल खड़े हैं। उस दिशा में दिव्यायन की कर्मधारा विकल्प मार्ग पर सार्थक अनुसंधान है।

आजकल गाँवों की उन्नति के लिए जो प्रयोजनीय है वह है कृषि का विज्ञान सम्मत मार्ग एवं शिल्प-उद्योग के माध्यम से ग्रामीण अर्थनीति की उन्नति करना। दिव्यायन ने ग्रामीणों के व्यक्तिगत उद्योग को बढ़ाने का कार्य शुरू किया। इस प्रकार के कार्य को कोई पूंजिवादी मार्ग का अभियोग लगा सकती है। जिस प्रकार एस. यू. सि. ए के प्राक्तन नेता शिवदास घोष ने हरित, क्रान्ति, ताईचुग, जापानी विधि से कृषि इत्यादि की आलोचना की है। परन्तु यह तर्क मात्र ही है। चीन इतने दिनों तक सामूहिक प्रथा से कृषि करने के उपरान्त पुनः व्यक्तिगत मालिकाना से कृषि-व्यवस्था में वापस आ रहा है। रूस के सामूहिक खामार के कर्मियों की व्यक्तिगत जमीन का परिमाण रूस सरकार की कुल भूमि का १.५% मात्र है। तथापि

खामार की तुलना में इन कमियों का उपार्जन जहाँ १९७० ई० में १५ मिलियन रूबल था वही व्यक्तिगत जमीनों से कृषि आय दी १९.६ मिलियन रूबल। १९७३ ई० यही आय क्रमशः १६.६ एवं २०.४ मिलियन रूबल हो गयी। अतः समाजवाद के नाम पर तर्क न करके वास्तविक परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक है। राष्ट्रीयकरण के नाम पर जो हुआ है इसका वास्तविक परिणाम क्या हुआ है इसे पाठकगण जानते हैं। बिहार की बात ही ले। लीजिए १९७० ई० में इस राज्य में आठ सरकारी निगम थे, १९८३ ई० में वह बढ़कर हो गया ४६। १९७७ से ८२ ई० तक इनमे पूँजी-नियोग हुआ ७९६ करोड़ से बढ़कर १४७८ करोड़ रुपये एवं इस समय कुल हानि १३१ करोड़ से बढ़कर २१९ करोड़ रुपये तक पहुँच गयी।

दिव्यायन में कृषि एवं उद्योग के प्रशिक्षण की व्यावहारिक दिशा पर ही अधिक जोर दिया गया एक शिक्षा-सूची इस प्रकार निर्धारित की गयी है कि अल्प-शिक्षित व्यक्ति भी आसानी से समझ सके। कल्याण के विधानचन्द्र कृषि विश्वविद्यालय इत्यादि का उद्देश्य महत्वपूर्ण होते हुए भी अ-कृषिजीवी छात्रों की संख्या अधिक है। परन्तु दिव्यायन में केवल कृषिजीवी छात्र ही कृषि की ट्रेनिंग ले सकते हैं। इसके साथ ही खेत-मजदूरो के लिए है एग्रो-इंडस्ट्री, एवं कुटीर-उद्योग शिक्षा-व्यवस्था गाँव को विद्युत एवं अन्य यंत्रो की मरम्मत के लिए बाहर के लोगों पर भरोसा किये बिना गाँवों के लोगों को ही फार्म-मेशिनरी एवं यंत्र-निर्माण की शिक्षा दी जाती है, उसी प्रकार पोलट्री, डेयरी, मधुमक्खी-पालन काष्ठकला आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

जो ट्रेनिंग लेने नहीं आ पाते हैं उनके लिए बाह्य शिविर परिदर्शन (off Campers demonstration) की व्यवस्था है। शिक्षकों के विभिन्न दल विभिन्न गाँवों में जाकर खेत पर ही प्रशिक्षण देते हैं। इस वर्ष कुल ४०० परिवारों की इस प्रकार सहायता की गयी है। मिट्टी की परीक्षा से लेकर, उन्नत बीज एवं प्रणाली व्यवहार इत्यादि से ग्रामवासियों को उत्साहित करना ही इसका उद्देश्य है। उदाहरणस्वरूप सितुमडीह गाँव की बात कही जाय। पहले इस गाँव मे गेहूँ की पैदावार नहीं होती थी। परन्तु नयी-विधि से खेती करने पर इस वर्ष अत्यधिक उपज हुई है। दिव्यायन के कार्य शुरु करने के प्रथम तीन वर्ष में ही शिक्षार्थियों ने अपनी फसल में ५०% से ३००% तक वृद्धि करली। जो जमीन एक ही फसल देती थी उससे लोग २ या तीन फसल प्राप्त कर रहे हैं। ग्रामीण खाद का व्यवहार, स्वयं नहर खोद कर जल की व्यवस्था करना एवं नई फसल नई विधि से खेती करना— इन सब विधियों से प्रशिक्षित व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

दिव्यायन के अन्वेषण-विभाग में केवल कृषि ही नहीं, अन्य अनेक विषयों पर अन्वेषण होते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप मुर्गी-पालन को लिया जाय। लेगहर्न मुर्गी को पालने में जो सेवा एवं अर्थ की आवश्यकता होती है वह ग्रामीण व्यक्तियों के लिए अधिकतर सम्भव नहीं हो पाती। उसके लिए अच्छी जाति के मुर्गे के साथ देशी मुर्गी का सहवास कराकर विशेष संकर जाति के मुर्गे एवं मुर्गियाँ तैयार की गयी जो गाँव के वातावरण में साधारण अन्न आदि खाकर भी जीवित रह सकती हैं। इसके फलस्वरूप कीमती अनाज, बिजली की व्यवस्था एवं अत्यधिक सेवा आदि के खर्च से छुटकारा मिल सकता है।

इस प्रकार भूमिगत आय पर ही आश्रित न होकर कर्म-संस्थानों के विभिन्न व्यवसायों के द्वारा आदिवासी एवं पिछड़े-वर्ग के ग्रामीणों की उन्नति हुई। दिव्यायन का एक मुख्य उद्देश्य है मोटिवेशन (Motivation)। उन्नत जीवन-यापन एवं भारतीयताबोध लाकर चेतना का विकास करना ही परम उद्देश्य है।

मोटिवेशन—राजनैतिक दलों की तुलना में दिव्यायन की दृष्टिभंगी में अन्तर है। राजनैतिक दलों द्वारा संचालित आन्दोलनों में अल्प व्यय एवं सस्ती राजनीति पर दिये जानेवाले ध्यान ने जनसाधारण को ग्रसित कर लिया है। इस सम्बन्ध में पहले ही आलोचना की

गयी। विभिन्न राजनैतिक-युनियन अपने सदस्यों को तो कर्म में उत्साहित कर नहीं पाते बल्कि पैरो दिलादेने-वाली राजनीति में ही उन्हें अभ्यस्त कर देते हैं। कृषक फ्रॉन्ट की भी यही दशा है। वर्ग-संघर्ष के नाम से वास्तव में जो दलीय राजनीति चल रही है इस बात को मार्क्सवादियों ने भी स्वीकार किया है। वस्तुतः इस कारण से श्रमिक-कृषक-आन्दोलन जिस प्रकार व्यर्थ हो रहा है उसी प्रकार राष्ट्रीयकृत-संस्था की एवं सरकारी संस्था की आर्थिक क्षति बढ़ती ही जा रही है।

सांस्कृतिक आन्दोलन के अतिरिक्त राजनैतिक, अर्थनैतिक आन्दोलन भी व्यर्थ होने के लिए मजबूर हैं, यह बात स्वामी विवेकानन्द पहले ही कह गये हैं। इसी कारण मनुष्य की चेतना को उन्नत करना ही दिव्यायन का प्रमुख कार्यक्रम है। बिहार में जातिवाद की अधिकता ने जिस प्रकार मानव की एकता को नष्ट किया है, उसी प्रकार पिछड़े वर्ग में अत्यधिक मद्यपान ने स्वास्थ्य एवं अर्थ को नष्ट कर रखा है। दिव्यायन के शिक्षार्थियों को सुनियन्त्रित दैनिक कार्यक्रम पर अभ्यस्त कर दैनन्दिन जीवन को एक छन्द में ढ़ाल दिया जा रहा है, उसी प्रकार विभिन्न वर्ण एवं धर्म के शिक्षार्थियों को एक साथ रहने-खाने की व्यवस्था से जातिवाद की भावना के विपरीत एक स्वस्थ चिन्ताधारा में अभ्यस्त किया जा रहा है। एक आंकड़ें से देखा गया कि दिव्यायन से लौटे प्रशिक्षार्थियों में से ९५% ने घर लौटकर पुनः मद्यपान नहीं किया। अडियो-विजुअल युनिट की सहायता से जिस प्रकार सामाजिक बुराइयों के कुपरिणाम दर्शाए जा रहे हैं, उसी प्रकार दूसरी तरफ अन्य देशों की उन्नति एवं उसी के साथ भारतीयता-बोधक उद्दीपक विभिन्न चल-चित्र दिखाये जा रहे हैं। राजनैतिक-दल निर्वाचन केन्द्रिक-राजनीति के फलस्वरूप धर्मीय-भाषागत प्रादेशिक विभेद को बढ़ा देते हैं। इन संकीर्ण परिचक्रों को तोड़-कर लोगों में भारतीयता-बोध को जागृत करने की दिशा में दिव्यायन सचेष्ट है। यद्यपि आदिवासियों में ही इसका कार्य है एवं आदिवासियों के लिये सरकारी रक्षा-कवच भी है, फिर भी शिक्षार्थी केवल मांग न करे। जिससे सामाजिक प्रतिबद्धता में अभ्यस्त हों इसके लिए प्रत्येक छात्र को शिक्षा के बाद दो वर्षों तक अनिवार्यतः ग्राम-सेवा करनी होती है।

अनुवादक—आशीष बैनर्जी, बाराणसी

□□

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत् स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

य: कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यश्यति
ततो निर्द्वन्द्वो भवति ।।४८

य: (जो) कर्मफलं (कर्मफल) [का] त्यजति (त्याग करते हैं), कर्माणि (कर्म समूह) [का] संन्यश्यति (त्याग करते हैं), तत: (तदुपरान्त—कर्म और कर्मफल के त्याग के द्वारा), निर्द्वन्द्व: (द्वन्द्व-रहित), भवति (होते हैं) [वे ही माया का अतिक्रमण करते हैं] ।।४८

जो कर्मफल का त्याग करते हैं, समस्त कर्मों का त्याग करते हैं एवं द्वन्द्वातीत होते हैं, वे ही माया का अतिक्रमण करते हैं ।।४८

किसी कर्म का फल चिरस्थायी होना तो दूर रहे, दीर्घकाल तक भी स्थायी नहीं होता। फिर फल की कामना करना विषय की कामना करना ही है—और इसके परिणामस्वरूप इष्ट की विस्मृति हो जाती है। फल की कामना रहने पर माया के हाथों से मुक्ति नहीं हो पाती। इसीसे भक्त अपने लिए किसी फल की कामना नहीं करते; सामने जो कार्य आ जाता है उसका फल इष्ट को अर्पण कर स्वयं को उनके हाथ का यंत्र-स्वरूप समझकर उस कार्य को कर लेते हैं।

यत् करोषि यदश्नासि यज्जहोषि ददासि यत् ।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ।।
गी० ९।२७

'जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, जो कुछ आहुति दो, जो कुछ दान करो, जो कुछ तपस्या करो, वह सब मुझको अर्पण करो।'

भगवान् के इस आदेश का वे प्रतिक्षण पालन करते हैं एवं इसके फलस्वरूप कर्म के शुभ-अशुभ फलों के बन्धन से मुक्त होकर भगवान् को ही पाते हैं।

शुभाशुभ फलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै: ।
संन्यासयोग युक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ।।
गी० ९।२८

"बड़े लोगों के घर के दास-दासी काम करने के समय सोचते हैं—सभी मालिक के काम हैं, अपना कोई काम नहीं। इसी तरह संसार में रहकर काम करते हुए मन में सोचना, सभी भगवान् के काम हैं, अपना कुछ नहीं। फिर पूजा, जप-तप करते हो, लेकिन लोगों में मान्यता प्राप्त करने के लिए नहीं अथवा पुण्य करने के लिए नहीं।"

"संसारी लोग शुद्ध भक्त होने पर लाभ-हानि, सुख-दु:ख, इन सभी कर्मों का फल ईश्वर को समर्पण कर देते हैं। संन्यासी को भी सभी कर्म निष्काम-भाव से करना होगा। संन्यासी विषय-कर्म संसारियों की भाँति नहीं करते। कर्म अच्छा है। खेत जोतने के बाद जो बोओगे वही उत्पन्न होगा। किन्तु कर्म निष्काम-भाव से करना होगा। सभी जीवों में ईश्वर हैं, उनकी ही सेवा करनी होगी। ईश्वर की सेवा होने पर अपना ही उपकार हुआ। केवल मनुष्य के भीतर नहीं, प्रत्येक जीव-जन्तु के भीतर भी ईश्वर ही हैं, ऐसा सोचकर यदि कोई सेवा करे, और वह मान, यश, मरने के उपरान्त स्वर्ग आदि—कुछ भी नहीं चाहे, जिनकी सेवा करता है उनसे प्रतिदान में किसी प्रकार का अपना उपकार नहीं चाहे, इस प्रकार यदि कोई सेवा करे, तो ऐसा होने पर

उसका यथार्थ निष्काम कर्म, अनासक्त कर्म करना हुआ। इस प्रकार का निष्काम कर्म करने पर उसका अपना ही कल्याण होता है।''

''सामने जो भी काम आया, ना करके नहीं, उस काम को ही कामनाहीन होकर करना होगा। इच्छा करके कामों से जुड़ना अच्छा नहीं, इससे भगवान् को भूल जाना पड़ता है। जैसे कोई काली घाट में दान ही करने लगा और काली का दर्शन हुआ नहीं। पहले जैसे-तैसे करके, धक्का-मुक्की खाकर भी काली-दर्शन करना चाहिए, इसके बाद जितना भी दान करो या नहीं करो! इच्छा हो, खूब करो। निष्काम कर्म करने पर ईश्वर में प्रीति होती है। धीरे-धीरे उनकी कृपा से उन्हें पाया जाता है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए ही कर्म हैं।''

''जो अनासक्त होकर दया और दान करता है, वह अपना कल्याण करता है। दूसरे का उपकार, दूसरे का कल्याण—यह सब ईश्वर करते हैं। माँ-बाप के भीतर जो स्नेह देखते हो, वह ईश्वर का ही स्नेह है, दयालु के भीतर जो दया देखते हो, वह ईश्वर की ही दया है। जीवों की रक्षा के लिए ही ईश्वर ने ये चीजें दी हैं। जीव के लिए उन्होंने चन्द्र-सूर्य, माँ-बाप, फल-फूल, अन्न बनाये हैं। तुम दया करो या नहीं करो; वे किसी-न-किसी सूत्र से अपना काम करेंगे। संसार के दुःखों का नाश तुम करोगे? संसार क्या इतना छोटा है? वर्षा काल में गंगा में बहुत केंकड़े हो जाते हैं; जानते हो? इसी प्रकार असंख्य, जगत् है। इस संसार के जो पति हैं, वे सब का समाचार लेते हैं। इस जीवन का उद्देश्य है पहले ईश्वर को जानना। इसके बाद जो हो सो करो।''

निष्काम भाव से कर्म करते-करते बाद में एक ऐसी अवस्था आती है जब कोई कर्म करने की फिर प्रवृत्ति नहीं होती। इष्ट जब भक्त के हृदय-आसन पर पूर्णरूप से अधिकार कर बैठ जाते हैं तब भक्त के सारे कर्मों का स्वयं त्याग हो जाता है। अहं-बोध रहने पर ही तो कर्म होता है। भक्ति की अधिकता से भक्त का 'मैं' इष्ट में लय हो जाता है। बलपूर्वक कर्म-त्याग के द्वारा नहीं, बल्कि सहज भाव से सभी कर्मों का त्याग हो जाने पर भक्त माया-मुक्त हो जाते हैं।

''सच्चिदानन्द में जबतक मन लय नहीं होता, तब तक ईश्वर को पुकारना और संसार के कार्य करना, दोनों ही रहते हैं। इसके बाद उनमें मन के लय हो जाने पर फिर किसी कार्य के करने की आवश्यकता नहीं रहती।''

''सत्वगुणी व्यक्ति का कर्म-त्याग स्वभावतः हो जाता है- चेष्टा करने पर भी वह पुनः कर्म कर नहीं पाता।....ईश्वर की ओर जितना आगे बढ़ोगे, उतना ही कर्म का आडम्बर कम हो जायगा। इतना कि, ईश्वर के नाम का गुण-गान करना पर्यन्त बन्द हो जाता है।''

'मैं कर्ता हूँ'—इस अहंकार के मिट जाने पर भक्त में और किसी के प्रति कोई आसक्ति या विद्वेष नहीं रहता—तब वे निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। द्वन्द्वातीत होने पर ही माया के बन्धन से मुक्ति मिलती है। अहं बोध के नष्ट हो जाने पर संसार के सारे द्वन्द्व—अच्छा-बुरा, सुख-दुःख, हेय-उपादेय, आदि भी भक्त के अन्दर किसी प्रकार का विकार उत्पन्न करने में—सुख या दुःख देने में समर्थ नहीं होते।

इस सूत्र में गुणातीत होने के लिए साधना-क्रम का कथन हुआ है। पहले ईश्वर में कर्म-फल का अर्पण—अपने फल भोग की वासना का त्याग कर ईश्वर के निमित्त कर्म का अनुष्ठान—करना होगा कामना-वासना का क्षय होने पर कर्मत्याग आता है। कर्मत्याग के बाद शान्त और निर्द्वन्द्व होने की अवस्था—केवल इष्ट को लेकर परमानन्द का भोग करने की अवस्था आ जाती है।

यो वेदानपि संन्यस्यति,
केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ॥४९॥

यः (जो) वेदान् अपि (वेद विहित विधि-निषेध एवं कर्म समूहों का भी) संन्यस्यति (परित्याग करते हैं), केवलं (एकमात्र) अविच्छिन्नानुरागं (इष्ट के प्रति अविच्छिन्न अनुराग) लभते (लाभ करते हैं) [वे ही मायामुक्त होते हैं] ॥४९

जो शास्त्रीय विधि-निषेधमूलक कर्मसमूहों का भी त्याग करते हैं एवं इष्ट के प्रति अविच्छिन्न अनुराग प्राप्त करते हैं (वे ही मायामुक्त होते हैं) ॥४९

शास्त्रीय विधि-निषेध समूह साधक के लिए हैं— सिद्धि-लाभ होने पर विधि-निषेध मानकर चलने की बात भी विस्मृत हो जाती है। वेदत्याग का आशय है कि भक्त वेद विहित कामना-युक्त कर्म के अनुष्ठान का परित्याग करते हैं। भाव-भक्ति जब प्रबल होती है, चित्त जब तद्गत होता है, तब फिर कोई विचार नहीं रहता; तब सारे नियमों को मानकर कर्मों का अनुष्ठान करना भक्त के लिए संभव नहीं रह पाता।

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान् न निवर्तते।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः॥
भा० ११।७।११

'बालकों के मन में जिस प्रकार अच्छे-बुरे का विचार नहीं रहता, गुणातीत भक्त भी उसी प्रकार विचारों के पार चले जाते हैं। वे 'यह कार्य बुरा है, अतः इसे नहीं करूँगा', ऐसा सोचकर किसी निषिद्ध कर्म का त्याग नहीं करते, अथवा 'यह कार्य उत्तम है', ऐसा सोचकर किसी कर्म में प्रवृत्त नहीं होते।'

इष्ट के प्रति जब अविच्छिन्न प्रेम होता है तब फिर विधि-निषेध का विचार कैसे रहेगा? साधक जब प्रेम की धारा में अपने शरीर को प्रवाहित कर देते हैं तब उनका माया का बन्धन छूट जाता है।

"कर्म बराबर करना होगा, ऐसा नहीं है। ईश्वर के प्रति प्रेम होने पर स्वयं ही कर्म-त्याग हो जाता है। जब एकबार हरि या एकबार राम का नाम लेने पर रोमांच हो जाय, अश्रुपात होने लगे, तब निश्चय पूर्वक समझ लो कि जप, आह्निक आदि कर्म करना अब आवश्यक नहीं रह गया। तब कर्म त्याग का अधिकार होता है। तब कर्म का अपने-आप त्याग हो जाता है। जब फल होता है तब फूल झड़ जाता है। जब भक्ति होती है, ईश्वर-लाभ होता है, तब संध्या आदि कर्म छूट जाते हैं। और कर्म करना नहीं होता। मन भी उसमें नहीं लगता। भक्ति फल है, कर्म फूल।"

"यदि ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, तब होम, याग-यज्ञ, पूजा—इन सब कर्मों को करने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। जबतक हवा नहीं मिलती, तबतक ही पंखे की आवश्यकता होती है, यदि स्वयं ही हवा बह रही हो, तो पंखे की और कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।"

"परमहंस अवस्था में पूजा, जप, तर्पण, संध्या—ये सब कर्म समाप्त हो जाते हैं। इस अवस्था में केवल मन का योग रहता है। लोक-शिक्षा के लिए अपनी खुशी से कभी-कभी बाहरी कर्म वह करता है, किन्तु प्रभु का स्मरण-मनन सदैव बना रहता है।

"ज्ञानोन्माद या प्रेमोन्माद होने पर कौन है माँ, कौन है बाप और कौन है पत्नी? ईश्वर में इतना प्रेम है कि पागल की भाँति हो गया है। उसको करने के लिए कोई कर्म नहीं रहता है। वह सभी ऋणों से मुक्त है। उस अवस्था में भविष्य की चिन्ता भगवान् करेंगे। प्रेमोन्माद होने पर संसार विस्मृत हो जाता है। भूख, प्यास, नींद, कुछ भी नहीं रहती। अपनी देह जो इतनी प्रिय वस्तु है वह भी विस्मृत हो जाती है।"

अविच्छिन्न अनुराग का एक उदाहरण :—

"राम, लक्ष्मण पम्पा सरोवर गये थे। लक्ष्मण ने देखा कि एक कौआ प्यास से व्याकुल होकर बार-बार पानी पीने जाता है, किन्तु पीता नहीं। लक्ष्मण द्वारा राम से इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, 'भाई, यह कौआ परम भक्त है। दिन-रात राम नाम का जप

करता है। सोचता है, पानी पीने में जो समय लगेगा उससे राम नाम के जप में एक अन्तराल पड़ जायगा।"

स: तरति स: तरति

स: लोकांस्तारयति ।।५०

स: (वे) तरति (माया का अतिक्रमण करते हैं), स: (वे) तरति माया का अतिक्रमण करते हैं), स: (वे) लोकान् (सभी लोगों को) तारयति (संसार-समुद्र के पार ले जाते हैं) ।।५०

इस प्रकार भक्त निश्चय ही स्वयं मायामुक्त होते हैं एवं दूसरों का भी उद्धार करते हैं ।।५०

पूर्व के तीनों सूत्रों में साधना का जो उपदेश श्री नारद ने दिया है उस प्रकार के साधन-सम्पन्न भक्त केवल स्वयं ही मुक्त नहीं हो जाते, बल्कि दूसरों का भी उद्धार करते हैं। श्रीमद्‌भागवत में भगवान् कहते हैं, 'मद्‌भक्तः भुवनः पुनाति'—मेरे भक्त संसार को पवित्र करते हैं।—(क्रमशः)

साधकों के लिए

साधक एक योद्धा

—स्वामी यतीश्वरानन्द

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

एक भक्त की शिकायत है कि मन सदा चंचल रहता है। वह जानना चाहता है कि ध्यान-जप के लिए क्या हमें उपयुक्त मनोभाव व समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए? यह तो मानो समुद्र में स्नान के लिए लहरों के शान्त होने की प्रतीक्षा करने जैसा होगा। मानसिक अशान्ति के समय हमें सांत्वना की अधिक आवश्यकता रहती है। मन की समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करने के लिए भगवान की अधिक आवश्यकता होती है। अतः यह निर्देश दिया गया है कि जितनी अधिक व्यग्रता हो उतना अधिक परमात्मा का चिन्तन करो। अपने समस्त कष्टों को भगवान से जोड़ दो। इसका फल क्या होगा? हमें अपने कष्टों को झेलने की शक्ति प्राप्त होगी। अपने विचारों और समस्याओं के द्रष्टा बनने से हम चेतना के भिन्न स्तर पर आरोहण कर जाते हैं। निम्न स्तरों में उलझने के लिए अवरोहण न करना—यही रहस्य है। दूसरा रहस्य है अपने रिक्त समय को भगवन्नाम व भगवत्‌चिन्तन से भर देना। चिन्ताएँ न होते हुए भी हम स्वयं उनका निर्माण करते हैं। काल्पनिक समस्याओं का चिन्तन कर हम वास्तविक समस्याएँ बना लेते हैं। यह उस बन्दर के कार्य जैसा है जो छोटे से घाव को खुजला-खुजला कर बड़ा बना डालता है। क्या हम भी ऐसा नहीं करते? हम समस्याओं का विचार करते-करते उन्हें आवश्यकता से अधिक बड़ा बना डालते हैं। इसके बदले भगवान का चिन्तन क्यों नहीं करते? यह प्रयोग करके तो देखो! सोचो कि वे मुझमें और मैं भगवान में अवस्थित हूँ। मंत्र में महान् शक्ति है। उसका जप करो। यह तुम्हें नया आलोक प्रदान करेगा। कबीर कहते हैं;

'मेघाछन्न दिवस वह नहीं जिस दिन बादल छाये हों, वह है जिस दिन हम भगवन्नाम न लें।

साधक एक योद्धा है और योद्धा में विपत्ति के समय अधिक साहस होता है। भगवान ने अर्जुन को क्या सलाह दी? "क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ,"...."निराश न होओ, हृदय की इस क्षुद्र दुर्बलता को त्यागो।" अपनी भयसंकुलता को त्यागो। तब तुममें कठिनाइयों के ऊपर उठने की सामर्थ्य आयेगी। कुछ लोग आत्महत्या करना चाहते हैं। लेकिन अस्वाभाविक रीति से जीवन-लीला बीच में ही समाप्त कर देने से क्या लाभ? संसार में पुनरागमन कर उन्हीं समस्याओं का पुनः सामना करना होगा। दुष्परिणाम केवल यही होगा कि अनेक वर्ष व्यर्थ नष्ट हो जायेंगे और प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। अपने पुत्र की मृत देह को लेकर जब कीसा गौतमी भगवान बुद्ध के पास आयी तो उन्होने उसे उपदेश नहीं दिया। उन्होंने केवल उसे ऐसे किसी घर से कुछ सरसों के दाने ले आने को कहा जहाँ कभी किसी की मृत्यु न हुई हो और उसने स्वयं सत्य का अनुसंधान कर लिया और कहा "अरे यह तो संसार का स्वरूप ही है।"

संसार कभी समस्या-विहीन नहीं हो सकता। सुख और दुःख साथ-साथ रहते हैं। हमें ऐसे संसार में रहना है जहाँ भला, बुरा और तटस्थ, तीनों मिश्रित हैं। यह त्रिगुणात्मक जगत् है। अतः इसका स्वरूप इससे भिन्न नहीं हो सकता। इसमें सत्वगुण की मात्रा कम है। क्या इस जगत् में चिर-सुख संभव है? क्या तुम मेघरहित चिर सूर्यालोकित नभ चाहते हो? कभी रजोगुण तो कभी तमोगुण प्रबल होता है। सत्व के आधिपत्य से कुछ क्षण प्रकाशित रहते हैं।

गहरी विपदा के समय कोई मानवीय सहायता काम नहीं आती। तब ईश्वरीय शक्ति की याचना करनी पड़ती है। घर अथवा मठ में कई प्रकार की कठिनाइयाँ रहती हैं; पर उच्च-स्तर पर आरोहन करने पर तुम उन्हें भूल जाओगे। मन को उच्च-स्तर पर कैसे उठाया जा सकता है? भगवन्नाम और भगवत्चिन्तन द्वारा। हम सत्य, अहिंसा, समता इत्यादि का अभ्यास नहीं करते, बल्कि काम, लोभ, घृणा आदि की विपरीत दिशा में जाते हैं और शान्ति की माँग करते हैं। वह कैसे मिलेगी? और यदि कुछ शान्ति मिली भी तो कैसी होगी वह शान्ति? क्या तुम स्वादिष्ट भोजन या अन्य किसी योग द्वारा प्राप्त शान्ति चाहते हो, जिसके फल-स्वरूप बाद में तुम्हें दुख भोगना पड़े? हम ऐसी शान्ति की खोज नहीं कर रहे हैं। महापुरुष उच्च भाव-भूमि में उठकर शारीरिक कष्ट भूल जाया करते थे। इसके लिए बहुत अभ्यास आवश्यक है। ध्यान द्वारा हम ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकते हैं जहाँ हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व नहीं रहते, जहाँ हमारी समस्याएँ नहीं होतीं। यह निद्रावस्था नहीं है। नींद तो अस्थायी विस्मरण की अवस्थामात्र है। मन भौतिक स्तर पर विचरण करना चाहता है। इसे उच्च स्तर पर उठाना चाहिए। उस उच्च मानसिक स्तर से अवरोहन करने पर तुम वस्तुओं को निष्पक्ष द्रष्टा के रूप से देख सकोगे। जहाँ अनासक्ति और निष्कामता है, वहाँ समस्याएँ कैसे संभव है? सही ढंग से अभ्यास करो। इससे महान शान्ति मिलेगी।

उच्च मन सामान्य अपवित्र मन से भिन्न है। साधारण मन शुभाशुभ दोनों का सेवन करता है। इससे भिन्न एक जीवन पद्धति भी है, परमात्मा के साथ के जीवन की। वही हमारी वास्तविक सत्ता है। इसको त्याग कर अनित्य के साथ तादात्मय स्थापित कर हम कष्ट पाते हैं। इन सभी समस्याओं को हमने ही पैदा किया है। संसार-चक्र घूम रहा है और तुम उससे चिपके हुए हो। उसे छोड़ दो। "तुमने ही अपने हाथों से रस्सी पकड़ रखी है," जो तुम्हें घसीट रही है। उसे छोड़ते ही तुम मुक्त हो जाओगे। बात इतनी सीधी-सी है। एक नये प्रकार का चिन्तन व जीवन-पद्धति का निर्माण करना—यह है लक्ष्य। यदि हम, भूतकाल में जिन समस्याओं का हमने सामना किया था, उनका सिंहावलोकन करें, तो हमें सचमुच आश्चर्य

होगा कि हम उनका सामना करने में कैसे समर्थ हुए थे। परिस्थितियों ने उनका साहसपूर्ण सामना करने के लिए हमें बाध्य किया था।

मन के ऐसे भाग भी हैं जिनका उपयोग नहीं हुआ है तथा जिनकी शक्ति सुप्त पड़ी है। हम सोचते हैं कि हम पूरी एकाग्रता से कार्य करते हैं, किन्तु सत्य तो यह है कि मन का केवल एक छोटा-सा अंश ही कार्य-विशेष में लगा रहता है और बाकी अंश इधर-उधर भटकता रहता है। मन की इस व्यर्थ जा रही शक्ति को बटोरना चाहिए। इस दिशा में प्रयत्न करने पर हम पायेंगे कि हममें महान् क्षमताएँ हैं। इस अनभिव्यक्त क्षमता का विकास करो।

मन देह और आत्मा के बीच की कड़ी है। वह किसी भी दिशा में जा सकता है। उसे परमात्मा की ओर, अन्तर्निहित आत्मा की ओर मोड़ दो। हरि महाराज सदा श्रीरामकृष्ण की उक्ति उद्धृत किया करते थे : 'देह जाने, दुख जाने, मन तुम आनन्द में रहो।' तात्पर्य यह है कि मन देह से अलग किया जा सकता है। ध्यान तुम्हें आत्मा को देह से पृथक करने में समर्थ करेगा। ध्यान के समय के इस अनुभव को कुछ मात्रा में सारे दिन भी बनाये रखो।

शक्ति के दो प्रवाह हैं : आध्यात्मिक और सांसारिक। साधक को आध्यात्मिक प्रवाह सबल करना चाहिए। सामान्यतः मन उच्च तथा निम्न, चेतन तथा अवचेतन, इन दो स्तरों पर कार्य करता है। मन का ऊपरी भाग तात्कालिक कार्य-विशेष से संलग्न रहता है। मन का निम्न भाग निरर्थक विचारों में व्यस्त रहता है। साधक को चेतन मन का ही नहीं बल्कि अवचेतन मन का भी आध्यात्मीकरण करना होता है। इन दोनों में तादात्म्य होना चाहिए। इसका अर्थ होगा, सर्वप्रथम नैतिक जीवन-यापन करना। क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि भावनाओं से मन का अधिकांश भाग भरा रहता है। इनके स्थान पर आध्यात्मिक भावनाओं और विचारों को भरना होगा। चेतन स्तर पर एक आध्यात्मिक-प्रवाह उठाने का प्रयत्न करो। फिर इसे बलवान बनाकर निम्न स्तरों तक प्रसारित करना होगा। जितनी मात्रा में सत्य, अहिंसा इत्यादि सद्गुणों का विकास होगा, उतनी ही मात्रा में मन स्पष्ट शुद्ध तथा भय, संशय, घृणा आदि समस्त बन्धनों से मुक्त होगा। अवचेतन मन से इन दुर्गुणों को दूर करने पर हम अपने ओछेपन तथा संकीर्णता से ऊपर उठ जायेंगे।

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः
परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः।
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं
तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि॥

—श्रुति भी यही कहती है कि मनुष्य जबतक इस मृतकतुल्य देह में आसक्त रहता है, तबतक वह अत्यन्त अपवित्र रहता है और जन्म, मरण तथा व्याधियों का आश्रय बना रहकर उसको दूसरों से अत्यन्त क्लेश भोगना पड़ता है। किन्तु जब वह अपने कल्याणस्वरूप अचल और शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तो उन समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है।

—विवेक चुड़ामणि, ३९७

बेलुड़ मठ में राजीव गाँधी

घर के बच्चे का घर में आगमन

बेलुड़ मठ। बुधवार १० अप्रैल। अपराह्न पौने चार का समय। और पन्द्रह मिनटों के बाद ही चाय का घंटा बजेगा। कार्यकर्त्तागण अपेक्षा कर रहे हैं कि कब श्रीमान् गंगा या श्रीमान् लक्ष्मी चाय की केटली लेकर उपस्थित होंगे। इसी समय एक नील-श्वेत हेलिकोप्टर खूब नीचे होकर मठ के क्षेत्र के ऊपर तीन बार चक्कर दे गया। इसके कुछ बाद ही पुलिस की हरेक प्रकार की गाड़ियों ने आना शुरू किया। आये अनेक पुलिस अधिकारी। किन्तु मठ के भक्तों और कार्यकर्त्ताओं को किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई। यथारीति आरती की प्रस्तुति चल रही है। प्रेसिडेन्ट श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज नियमानुसार वाहर निकलते हैं। साथ में हैं दो सेवक—स्वामी आत्मरामानन्द (राधाकृष्ण महाराज) और अनन्तरानन्द (जगदीश महाराज)। उसी क्षण यह खबर मोटे तौर पर मठ-भवनों के कई लोग जान जाते हैं कि प्रधानमंत्री के प्रेस एडवाइजर शारदा प्रसाद ने उसी दिन दिल्ली से फोन किया था रामकृष्ण मठ और मिशन के महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्दजी को :··प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की प्रबल इच्छा है कि वे शुक्रवार १२ अप्रैल को थोड़ी देर के लिए भी पुण्यतीर्थ बेलुड़ मठ में आना चाहता है।—ठीक तो। श्रीरामकृष्ण के निकट आयेंगे यह तो आनन्द की बात है।''

—समय १ वजकर ५० मिनट। रहेंगे २.३० वजे तक।

व्यवस्था पक्की हो जाती है। ठाकुर स्वामीजी का काम होता है बिजली की तरह द्रुत और वज्र की तरह दृढ़। उधर सरकारी सुरक्षा कर्मचारीगण भी काम में लग गये।

शुक्रवार को सवेरे मठ का कार्य शुरू होता है। समय ९ वजकर ३७ मिनट। प्रेसिडेन्ट स्वामी गंभीरानन्दजी आते हैं मन्दिर में श्रीरामकृष्ण के समीप। साथ में हैं जगदीश महाराज। गंभीर महाराज के हाथ में अर्घ्य धर देते हैं स्वामी सुदेवानन्द (माखन महाराज)। गंभीर महाराज ने अर्घ्य निवेदन किया ठाकुर (श्रीरामकृष्णदेव) को। नील चन्द्रातप के नीचे ठाकुर बैठे हैं। ग्रीवा में श्वेत-नील-लाल पुष्पों की माला। उन्हें प्रणाम करते हैं मठ-मिशन के अध्यक्ष। अपूर्व दृश्य। साढ़े दस वजे मठ प्राङ्गण के सभी गेट बन्द हो जाते हैं।

समय सरक रहा है। चारों ओर पेड़-पौधों में अभी हरियाली का समारोह है। पक्षी चहचहा रहे हैं। चैती बयार बह रही है। श्वेत-उज्वल धूप। चारों ओर निर्जन। शान्त गंगा। ऐसी सुन्दर, निर्जन दोपहर को देखने पर ही समझ में आता है कि क्यों रवीन्द्रनाथ ने दोपहर को कहा था—'रौद्रमयी रात।'

समय १-४५। हेलिकॉप्टर दिखाई पड़ा। उतरा ठीक १-५० में। उतरे राजीव गाँधी। उनका स्वागत किया महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्द और स्वामी आत्मस्थानन्द ने। कर जोड़कर सहास्य सबको प्रणाम किया राजीव ने। स्वामी हिरण्मयानन्द ने उनके हाथ में रख दिया एक सुन्दर फूलों का गुच्छा। कहा—'वेलकम (स्वागतम्)। किन्तु सोनिया कहाँ है? उसके लिए भी जो एक 'पुष्प स्तवक' था। उसके लिए क्या तुम वह लोगे?'—'जरूर। दिल्ली जाकर उसे दूँगा।'

हाथ बढ़ाकर उसे लिया। नजदीक के एक व्यक्ति के हाथ में देकर कहा, 'साथ में जायगा।'

फिर मोटर में। सामने की सीट पर राजीव और ड्राइवर। पीछे की सीट पर स्वामी हिरण्मयानन्द, स्वामी गहनानन्द और एक सिक्युरिटी का आदमी।

हिरण्मयानन्दजी ने कहा—तुम जो आये हो, आ पाते हो, इससे हम सभी आनन्दित हैं।

—मुझे भी इस बार आ पाने में बड़ा अच्छा लगा। कुछ ठीक नहीं था। श्रीरामकृष्ण ने हठात् खींच लिया। सोनिया को कुछ अन्य कार्य थे। इसीसे वह नहीं आ पायी।

—'अरुण सिंह? वे तो पिछली बार आये थे।'

—उसे कलकत्ते में काम है। इसके अलावे इस बार हेलिकोप्टर में जगह की भी कमी थी।

गाड़ी मन्दिर के सामने रुकी। राजीव ने बाहर से ही प्रणाम किया श्रीरामकृष्ण को। (मठ के नियमानुसार जाड़े में अपराह्न साढ़े तीन और ग्रीष्म-काल में संध्या चार के पहले मन्दिर नहीं खुलता है।)

गाड़ी आगे बढ़ी। गंगा के तट पर कृष्णचूड़ा का कुंज। यहीं कदम्ब, वट, नागलिंगम और चन्दन के पेड़ हैं। आमतला। वहाँ थे स्वामी निर्लिप्तानन्द और स्वामी दर्शनानन्द। राजीव सर्वत्र साधुओं को प्रणाम निवेदित करते हैं।

स्वामीजी (स्वामी विवेकानन्द) का घर। बारामदे पर राजीव का स्वागत किया—स्वामी सत्यघनानन्द (कोषाध्यक्ष), स्वामी गीतानन्द (सह-सचिव) और स्वामी प्रभानन्द (सह-सचिव) ने।

दुमंजिला। स्वामीजी के घर के सामने प्रणाम निवेदित कर भरत महाराज के घर में। वहाँ अन्य लोगों के साथ थे महाराज के एकनिष्ठ सेवक और साथी मन्टू बाबू।

सभी बैठे। राजीव ने प्रणाम कर भरत महाराज से पूछा—आप कैसे हैं?

—मैं अच्छा ही हूँ। तुम कैसे हो, कहो। तुम्हारे अच्छा रहने से अभी सारे देश के कोटि-कोटि मनुष्यों का अच्छा रहना जुड़ा है।

—आप मुझे आर्शीवाद दें महाराज!'

—आप मुझे आर्शीवाद दें महाराज।

—आर्शीवाद तो है ही।

राजीव ने भरत महाराज के लिए लाया था एक बड़े झोले में फल और रेशमी धोती तथा चादर। महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक लिया।

—राजीव, तुम भोजनकर क्यों आये? जो हो, अभी तो कुछ खाओ! क्या खाओगे बोलो!

—आपकी जो इच्छा हो महाराज!

इस कार्य के लिए थे स्वामी अनन्तानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द और ब्रह्मचारी निर्लेप चैतन्य। पिछली बार पायस खाकर खूब प्रसन्न हुए थे राजीव? इस बार उन्हें दिया गया उस कटोरे से ढाई गुना बड़े कटोरे में पायस।

राजीव ने धीरे-धीरे खूब प्रसन्न चित्त से खाया—एक निमकी, चार टुकड़े आम, एक कटोरा पायस और दो ग्लास लस्सी। खाते-खाते वार्तालाप सभी साधुओं के साथ।

—राजीव, तुमने कलकत्ते के सम्बन्ध में जो कहा है उसे लेकर बड़ा शोर-गुल हुआ।

—हुआ है क्या, बात को मूल विषय से अलग कर देखा गया, यही विपत्ति है। कलकत्ता को मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रेम करता हूँ। आइ वान्ट टू प्रिवेन्ट कलकत्ता फ्रॉम डाइंग (मैं कलकत्ता को मरने से बचाना चाहता हूँ)।

—तुम बच्चे हो। तुम्हारे कंधों पर अनेक दायित्वों का बोझ है। तथापि तुम तो अच्छा ही चला रहे हो। देश के लोग तुम्हें प्यार ही करते हैं।

—हाँ चेष्टा करता हूँ। अनेक समस्याएँ हैं—पंजाब, श्रीलंका। फिर भी मैं आशावादी हूँ। आइ एम वेरी होपफुल। ये सब समस्याएँ मुझे बड़ी नहीं लगतीं, मुझे दूसरी समस्या चिंतित करती है।

—वह क्या?

—हमलोगों को जाना होगा इक्कीसवीं शताब्दी में। हमलोगों को चाहिए आधुनिक टेक्नोलॉजी, आधुनिक विज्ञान। किन्तु उसके साथ ही हमलोगों को अपनी परम्परा से विच्युत नहीं होना है। हमलोगों का आत्मिक और मानविक मूल्य बोध नष्ट नहीं होना चाहिए। यहीं आता है स्वामी विवेकानन्द की विचार-धारा का गुरुत्व। वे ही हमलोगों के पथ-प्रदर्शक हैं। उनकी भारत-भावना और शिक्षा-विषयक विचार-धारा से बहुत सारी चीजें हमलोगों को लेनी ही होंगी। मैं इस विषय में खूब सोचता हूँ। शिक्षा में अनेक विदेशी और क्षतिकारक वस्तुओं का अनुप्रवेश रोकना चाहता हूँ।

सब ने स्तब्ध होकर उनकी बात सुनी।

फिर भरत महाराज ने राजीव को ठाकुर का प्रसाद दिया - धोती, चादर। सोनिया के लिए श्रीमाँ का प्रसाद—साड़ी। पल्लीमंगल का एक बड़ा बैग और एक छोटा मनी बैग। और उन्हें दी गयी दो पुस्तकें—अंग्रेजी में स्वामीजी की चुनी हुई रचनाएँ और स्वामी गंभीरानन्द पुणीत मठ-मिशन का इतिहास। राजीव खूब खुश हुए।

पूछा—क्या नये प्रेसिडेन्ट स्वामी गंभीरानन्द महाराजजी का दर्शन और प्रणाम करने की अनुमति पा सकता हूँ?

—अच्छा तो।

—चलिए। पैदल ही चलूँगा।

किन्तु जाना हुआ निश्चय ही गाड़ी से ही।

साधु निवास के एकमंजिले भवन के एक ओर हैं स्वामी गंभीरानन्दजी अनलंकृत घर। एक आश्चर्य-जनक आध्यात्मिक वातावरण। राजीव आये। प्रणाम किया। एक बड़े झोले में फल निवेदित किया। रेशमी धोती और चादर दी। आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना की।

—आशीर्वाद श्रीरामकृष्ण का। वह तुम्हारे साथ रहेगा। थोड़ा बैठो।

राजीव बैठे एक कुर्सी पर।

— मैंने तो तुम्हारा एकमात्र भाषण सुना था रेडियो पर। शान्ति-निकेतन में जो कहा था तुमने।

—मेरा भाषण सुना था आपने! बच्चे की तरह हँसे राजीव। फिर आर्शीवाद चाहा।

हेलिपैड की ओर गाड़ी पर जाते-जाते कहा राजीव ने—कितनी सुन्दर गंगा है। कितना सुन्दर मन्दिर है। कितना सुन्दर परिवेश है। जाने की इच्छा नहीं होती है।

—ठीक तो। फिर जब आना, कुछ दिनों तक रहकर जाना! सोनिया को भी साथ में लाओ।

हेलिपैड। फिर साधुओं को प्रणाम किया राजीव ने। साधुओं ने प्रकट की शुभेच्छा।

२.३६। टेक ऑफ।

बाद में एक साधु ने कहा: राजीव की भद्रता का परिचय पहले ही पाया है। इस बार देखा उसका शार्पनेस बढ़ा है। अब वह काफी अधिक परिणत हो गया है। स्वामीजी की भावधारा को आत्मस्थ किया है। ठाकुर के प्रति प्रेम है। और इस बार उसका मठ में आना वैसा ही है जैसे घर के लड़के का घर में आना।

□